अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-37, अंक-24, 1-15 अगस्त, 2014

अगस्त क्रान्ति

विशेषांक

वो शहीद-ए-तेग-ए-जफा हूँ मैं जिसे आसमाँ ने मिटा दिया।
मेरे लब से न निकली आह तक मुझे गोलियों से उड़ा दिया।

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र
सर्वोदय जगत
वर्ष : 37, अंक : 24, 1-15 अगस्त, 2014

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

अतिथि संपादक
अशोक मोती
मो. : 7488387174

प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	**2000 रुपये**
आधा पृष्ठ	:	**1000 रुपये**
चौथाई पृष्ठ	:	**500 रुपये**

इस अंक में...

1. मैं क्या चाहता हूँ... 2
2. हर क्रांति के अगुआ होते हैं... 3
3. अगस्त क्रांति और गांधीजी... 5
4. चम्पारण : गांधी का प्रथम... 7
5. जे. पी. हिन्दुस्तान का... 9
6. राष्ट्रीय आंदोलन में... 13
7. अंडमान जेल में क्रांतिकारी... 15
8. यह कैसी आजादी है?... 17
9. गतिविधियां एवं समाचार... 19
10. प्रतिबंधित कविताएं... 20

मैं क्या चाहता हूँ

❑ **महात्मा गांधी**

संपादक ने इस स्तम्भ में मुझसे यह बताने को कहा है कि ''मैं क्या चाहता हूँ।'' यह शीर्षक भ्रामक है। मैं तो यहां केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक प्रतिनिधि हूं और कांग्रेस से अलग कुछ नहीं चाहता। इसलिए ''मैं क्या चाहता हूं'' का अर्थ यह है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस क्या चाहती है?

तो मैं पाठकों को पहले अपने स्वामी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का परिचय दूं। यह भारत का शायद सबसे पुराना राजनीतिक संगठन है और समूचे भारत का प्रतिनिधि होने का दावा करता है। मैं जानता हूं कि कुछ लोग इस दावे को नहीं मानेंगे। पर मैं केवल यही कह सकता हूं कि यह दावा सेवा के अधिकार से बना है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सैंतालीस वर्ष से कुछ अधिक पुरानी है। इसे एक अंग्रेज, एलन ऑक्टोवियस ह्यूम ने जन्म दिया था। हिन्दुओं के अलावा मुसलमान, पारसी और ईसाई भी इसके अध्यक्ष रह चुके हैं। दो महिलाएं डॉ. एनी बेसेंट और श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इसकी अध्यक्ष रह चुकी हैं। इसके सदस्यों में जमींदार भी हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व्यक्तियों की पूजा नहीं करती। वह वर्गों, धर्मों और स्त्री-पुरुषों में भेदभाव नहीं करती। उसने सदा तथाकथित अस्पृश्यों के पक्ष का समर्थन किया है और पिछले कुछ सालों से उसने एक अस्पृश्यता-विरोधी समिति स्थापित कर रखी है, ताकि अस्पृश्यता को तेजी से खतम किया जा सके।

परंतु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इस दावे का, जिसे न तो चुनौती दी गयी है और न दी जा सकती है, आधार इस तथ्य में है कि वह भारत के सात लाख गांवों में बसे देश की कुल आबादी के 85 प्रतिशत से भी अधिक मूक व निर्धन लोगों का प्रतिनिधित्व करती है।

इस महान् संगठन के नाम पर मैं दावा करता हूं :

1. भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता का।
2. इसमें ऐच्छिक और पूर्ण समानता पर आधारित साझेदारी के लिए स्थान रहेगा।
3. इसमें संघ-योजना या ऐसे संरक्षणों के लिए भी स्थान रहेगा, जो भारत के हित में स्पष्टतः आवश्यक हो सकते हैं।

मैं आशा करता हूं कि *'डेली मेल'* के पाठक कांग्रेस की ओर से निर्भीकतापूर्वक रखे गये इस दावे से भयभीत नहीं होंगे। 'दूसरों से अपने प्रति जैसे व्यवहार की अपेक्षा रखते हों, तुम खुद भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार करो।' उन्नीस सौ साल पुरानी इस बुद्धिमत्तापूर्ण कहावत के आधार पर मैं यह आशा करता हूं कि भारत की स्वतंत्रता जिससे कि वह ब्रिटिश शासन के कारण वंचित रहा है, अंग्रेज नर-नारियों को बुरी नहीं लगेगी।

स्वयंसिद्ध सत्य के लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। स्वाधीनता हर राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है।

भारत का भी यह अधिकार है, परंतु यहां यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि ब्रिटिश शासन के अधीन भारत अधिकाधिक निर्धन और दुर्बल होता गया है। ग्राम-उद्योग नष्ट हो गया है और पूरे राष्ट्र को निःशस्त्र कर दिया गया है। अपने पूरे अर्थों में केवल पूर्ण स्वतंत्रता ही भारत को सुखी और शक्तिशाली बना सकती है। *(डेली मेल, 19.9.1931)*

संपादकीय

हर क्रांति के अगुआ होते हैं छात्र व युवा

तरुण इस दुनिया के रचनाकार और निर्माता रहे हैं, इस तथ्य को हमें सदैव स्वीकार लेना चाहिए। फ्रांस की क्रांति में वहां के पददलित किसानों के साथ-साथ रूस की समता, स्वतंत्रता और बंधुता की विचारधारा से प्रेरित यूरोप के तरुणों ने भी बराबर का योगदान किया था। यह संघर्ष मनुष्य को मानवोचित गरिमा एवं स्वतंत्रता प्रदान करने तथा समता और बंधुता के साथ जीने के बुनियादी मानव अधिकार की प्राप्ति के लिए किया गया था।

रूसी क्रांति भी विश्व इतिहास का महत्त्वपूर्ण मोड़ है। इसमें शक नहीं कि रूसी क्रांति बुनियादी तौर पर सर्वहारा की क्रांति के भीषण ज्वाला में परिवर्तन व प्रज्वलित कर दिया था, उसकी चिंगारी किसी झुग्गी-झोपड़ी में नहीं बल्कि रूस के विद्यालयों और महाविद्यालयों में फूटी थी। लेनिन को विद्यार्थियों की कटु आलोचना भी करनी पड़ी थी लेकिन उसका कारण था कि ये छात्र लेनिन की पार्टी 'वोल्शेविक पार्टी' से संबद्ध नहीं थे, जिसके सिर पर क्रांति की सफलता का सेहरा बंधा, छात्र तो एक दूसरी 'मेंशेविक पार्टी' से संबद्ध थे।

इस तरह दुनिया के संघर्षों में छात्रों की भूमिका को नजरअंदाज करना या इतिहास में उसके योगदान को घटाने की चेष्टा करना तथ्यों का दबा देने जैसा होगा। हर क्रांति के अगुआ तो छात्र व युवा ही होते हैं। चीन और वर्मा में भी सामाजिक और आर्थिक क्रांति में तरुण अगली पंक्ति में थे। सूडान, जापान और कोरिया में छात्रों की भूमिका अगुआ के रूप में वहां के सामाजिक व राजनैतिक परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण रही है।

'काल मार्क्स' ने मजदूर या श्रमिक को ही क्रांति का वाहक माना, जो समाज के सर्वाधिक पीडित रहे लेकिन यह अवधारणा विफल होती चली गयी। 'गांधी' ने शोषण को सिर्फ आर्थिक शोषण तक ही सीमित नहीं माना बल्कि उसे हिंसा के व्यापक रूप में देखा। गांधी ने कहा, 'मनुष्य उतना ही सभ्य हुआ है, जितना वह हिंसा से मुक्त हुआ।' इसमें यह धारणा भी झूठ साबित होती चली गयी कि आर्थिक परिस्थितियों के गर्भ से जो चेतना पैदा नहीं होती, वह क्रांतिकारी नही हो सकती। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन ने यह स्पष्ट कर दिया कि छात्र व युवा 'समाज की चेतना' का प्रतिनिधित्व करते हैं। युवा

15 अगस्त
'स्वतंत्रता दिवस' की हार्दिक शुभकामनाएं!

की दुनिया ऐसी दुनिया होती है जिसमें तथ्यों से अधिक स्वप्न यथार्थ होते हैं और वस्तुस्थिति से अधिक कल्पना प्रबल होती है।

हमारे देश के स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास में प्रारम्भ से ही तरुणों की अजेय हिम्मत और शहादत, एक गौरवपूर्ण क्रांतिकारी अध्याय की रचना करती है। लाखों तरुण हृदयों के नायक और उनकी आँखों के तारे भगत सिंह जब हँसते-हँसते फांसी पर झूले, उस समय जेल के दरवाजे पर एकत्र होकर हजारों तरुणों ने नारे लगाये। उस समय शायद ही किसी छात्र का कमरा ऐसा हो, जिसमें इस अमर शहीद की तस्वीर न हो।

आंदोलन के दौरान हजारों तरुणों ने महात्मा गांधी के आह्वान पर विद्यालयों, महाविद्यालयों की अपनी पढ़ाई छोड़ दी और आंदोलन में शामिल हो गये। हमारे स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास में नयी पीढ़ी के इस गौरवपूर्ण योगदान को न तो कभी भुलाया जा सकता है, न ही कभी झूठलाया जा सकता है।

वर्धा में कांग्रेस कार्यकारिणी ने 14 जुलाई, 1942 को 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव स्वीकृत किया तथा उसे बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्णय हुआ। 31 जुलाई को प्रांतीय कांग्रेस कमिटी की एक अल्पकालीन बैठक हुई। यह उम्मीद होने लगी थी कि बम्बई में नेताओं को इस बैठक से पूर्व ही गिरफ्तार न कर लिया जाये। लेकिन 5 अगस्त से बम्बई में बैठक हुई और 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव की सम्पुष्टि कर दी गयी। गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक संघर्ष करने का संकल्प था तथा लोगों से यहा कहा गया था कि आंदोलन का आधार अहिंसा को लोग सदा याद रखें। गांधीजी ने अपने भाषण में 'करो या मरो' का महामंत्र दिया। उन्होंने कहा कि हम या तो भारत को स्वतंत्र करेंगे या उसके लिए संघर्ष में अपने प्राणों की बलि देंगे। हम देश को चिरंतन दासता की बेड़ियों में बंधे हुए देखने को जिन्दा नहीं रहेंगे।

लेकिन गांधीजी सहित कार्यकारिणी के सभी सदस्य 9 अगस्त की सुबह ही गिरफ्तार कर लिये गये। सारे देश में गिरफ्तारियां होती रहीं। भारी संख्या में लोगों की गिरफ्तारियां हुईं। अगस्त क्रांति फूट पड़ी। छात्रों में इसकी प्रतिक्रिया सर्वप्रथम हुई। स्वतंत्रता संग्राम के इस अन्तिम चरण में छात्रों एवं तरुणों का सबसे प्रमुख योगदान रहा। राजेन्द्र प्रसाद की गिरफ्तारी पर बी. एन. कॉलेज से छात्रों ने एक विशाल जुलूस सारे प्रतिबंधों को तोड़कर निकाला। पटना कॉलेज के लगभग दो हजार छात्रों ने पटना विश्वविद्यालय मैदान में एक सभा की और फिर पटना इंजीनियरिंग कॉलेज पर कांग्रेस का झंडा फहराने चले। वहां झंडा पहले से फहराया गया था, अधिकारियों ने जिसे उतार दिया था। लेकिन छात्र सभी कॉलेजों और विद्यालयों तथा हॉस्टलों में कांग्रेस का झंडा फहराने का काम करते रहे। पटना मेडिकल कॉलेज के छात्र, नर्स और सफाई

कर्मी, भंगी सबों ने हड़ताल रखी। *10 अगस्त को मुजफ्फरपुर, बिहारशरीफ और नालंदा, बाढ़ आदि जगहों के सभी महाविद्यालयों एवं विद्यालयों में हड़ताल रही। कांग्रेस ने अपील जारी की—'महात्मा गांधी के जीवनकाल का यह अंतिम युद्ध है और स्वराज के लिए भी यह अंतिम लड़ाई है। यह किसी छोटी-मोटी चीज के लिए नहीं लड़ी जा रही। इस युद्ध में विश्वशांति और विश्वहित के प्रश्न जुड़े हुए हैं। इसलिए यह आशा की जाती है कि प्रत्येक भारतवासी जिसे अपने देश के लिए प्रेम होगा और उसकी स्वतंत्रता चाहता होगा, बिना किसी ऊहापोह के इसमें अवश्य सम्मिलित होगा। बिना बलिदान के किसी भी देश ने आजादी हासिल नहीं की है। हमें भी सर्वस्व बलिदान करने को तैयार रहना चाहिए और इसमें कूद पड़ना चाहिए। जो देश स्वतंत्रता के लिए युद्ध कर रहे हैं, उन्हें पानी की तरह अपना खून बहाना पड़ा है और अपनी सम्पदा समुद्रों में तथा आग की लपटों में झोंकनी पड़ी है। हमें एक ऐसे ही देश से स्वतंत्रता हासिल करनी है। यह बलिदान से ही हासिल हो सकती है।'*

हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि इस 'असहयोग' एवं 'सत्याग्रह' के लिए सच्चा अस्त्र 'अहिंसा' है। इसलिए हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जो 'अहिंसा' और 'सत्य' के विरुद्ध हो। आशा की जाती है कि प्रत्येक भारतवासी इस महान लक्ष्य में अपना भाग अदा करेगा और उसकी सफल समाप्ति तक उसमें लगा रहेगा। महात्मा गांधी या अन्य नेताओं के आदेशों के अनुसार सभी को काम करना है। इस दौरान छात्रों से विशेष अपील की गयी थी कि वे स्कूल-कॉलेज छोड़कर आंदोलन में कूद पड़ें। छात्रों से बहुत कुछ की आशा है और यह आशा की जाती है कि वे उसे अवश्य पूरा करेंगे।

इस अपील से संघर्ष में तीव्रता और गति आ गयी। 11 अगस्त को माहौल सहसा गंभीर हो गया। उस दिन ऐसी घटनाएं हुईं, जिनसे बिहार ही नहीं बल्कि पूरे देश के स्वातंत्र्य-संघर्ष के इतिहास में यह दिन सदा स्मरणीय रहेगा। यह दिन स्वतंत्रता की बलि वेदी पर कई तरुणों की शहादत का दिन था। उस दिन पटना सचिवालय भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराने को लोग कृतसंकल्प थे और अगुआ थे छात्र व युवा। इस उद्देश्य से हजारों छात्र-युवा और लोग उत्साह एवं उत्तेजना से भरे पटना सचिवालय के पूर्वी गेट पर लगभग दो बजे एकत्रित हुए। 2.15 बजे पूर्वी गेट पर एक झंडा फहरा दिया गया। इस अवसर पर पटना के जिलाधिकारी, अतिरिक्त आरक्षी अधीक्षक और सदर अनुमंडलाधिकारी शक्तिशाली पुलिस दस्ता के साथ मौजूद थे। लोग सचिवालय हाता में प्रवेश कर सचिवालय भवन पर झंडा फहराने की कोशिश करते रहे। आखिरकार 4.57 मिनट पर जिला मजिस्ट्रेट ने गोली चलाने का आदेश दे दिया। गोरखा घोड़सवार पुलिस द्वारा 13-14 राउण्ड गोलियां चलायी गयीं। 7 छात्र झंडा फहराते घटनास्थल पर ही शहीद हो गये और 25 गंभीर रूप से घायल हुए, जिन्हें मेडिकल कॉलेज पहुंचाया गया।

शहीद छात्रों में 9वीं कक्षा तक के भी छात्र थे, जिन्होंने अपनी शहादत देकर किसी भी क्रांति में तरुणों की अपनी भूमिका को परिभाषित कर लिया था। 7 शहीदों में थे :

1. *उमाकांत प्रसाद सिन्हा,* राममोहन राय सेमिनरी स्कूल के 11वीं के छात्र। 2. *रामानन्द सिंह,* राममनोहर राय सेमिनरी पटना के 11वीं कक्षा का छात्र। 3. *सतीश प्रसाद झा,* पटना कॉलेलिएट स्कूल के 11वीं कक्षा का छात्र। 4. *गणपति कुमार,* बी.एन. कॉलेज के द्वितीय वार्षिक श्रेणी का छात्र। 5. *देवपद चौधरी,* मिलर हाईस्कूल के 9वीं कक्षा का छात्र। 6. *राजेन्द्र सिंह,* पटना हाईस्कूल के 11वीं कक्षा का छात्र। 7. *रामगोविन्द सिंह,* पुनपुन हाईस्कूल के 11वीं कक्षा का छात्र।

11 अगस्त को सचिवालय गोली काण्ड में छात्रों की शहादत ने प्रांत और देशभर में आजादी की लड़ाई में एक नयी जान डाल दी। उसमें जो लपटें उठीं वे मानो भारत को आत्म निर्णय का अधिकार हासिल करने के मार्ग में जो भी बाधाएं बाधक थीं, उन्हें भस्मसात् कर देने वाली थी। सचिवालय के फाटक पर शहीद होने वाले छात्र वस्तुतः गांधीजी के शब्द 'करो या मरो' के प्रतीक बन गये। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर आजादी की लड़ाई में असंख्य नौजवान कूद पड़े। जिस तेजी से क्रांति की आग फैली और जनता कांग्रेस व गांधी की पुकार पर भारी उत्साह से आगे आयी एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार वह 'अधिकारियों के लिए कल्पनातीत थी।' पटना में विद्यालय के छात्रों की शहादत ने यह स्पष्ट कर दिया कि विश्व में जहां भी कोई क्रांतियां हुई हैं, उनमें छात्रों-युवाओं की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। दुनिया की कोई भी क्रांति केवल युवा शक्ति द्वारा ही हुई है, ऐसा नहीं है, जनता का साथ भी अनिवार्य है।

1974 के जे. पी. आंदोलन जो देश की दूसरी आजादी की लड़ाई थी, में भी छात्रों-युवाओं ने अपनी उतनी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

भारत में गांधी के नेतृत्व में लड़ा गया स्वतंत्रता आंदोलन और 1974 के जे. पी के नेतृत्व में लड़े गये लोकतंत्र बचाओ आंदोलन ने विश्व को यह भी बता दिया कि क्रांति अब अहिंसा से ही होगी। 'हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा' के सूत्रवाक्य को आज के तरुणों ने अंगीकार कर लिया है।

इन आंदोलनों ने यह भी बतला दिया है कि भावी क्रांति किसी विशेष वर्ग द्वारा और वास्ते नहीं होगी। किन्तु क्रांति सच्चे अर्थ में मानवीय हो, इसके लिए उसकी शुरुआत व्यक्ति से होगी। एक सच्ची लोक-क्रांति का नेतृत्व सर्वथा किसी विशिष्ट वर्ग या व्यक्ति द्वारा नहीं अपितु सामान्यजन इस क्रांति का कर्ता होगा। छात्र और युवा संपूर्ण सामाजिक रूपांतरण के लिए लालायित रहेंगे और इससे सही अर्थों में लोक-क्रांति होगी।

क्रांति हेतु फिर कोई छात्र या युवा ही कहेगा—*'अबलो नसानी, अब न नसैहों!'*

अगस्त क्रांति के शहीदों तथा दिवंगत नेताओं को विनम्र श्रद्धांजलि! —**अशोक मोती**

अगस्त क्रांति और गांधीजी की विरासत

❑ बिमल कुमार

अगस्त, 1942 की क्रांति एवं इसकी पृष्ठभूमि, स्वतंत्रता आंदोलन के एक निर्णायक मोड़ का दौर था। भारत के नेतृत्व की कठिन परीक्षा का भी दौर था।

सन् 1936 के चुनावों ने यह दिखा दिया था कि कांग्रेस पार्टी देश के बहुत बड़े बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है। अतः भारत के बारे में कोई निर्णय लेने में उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है।

इसी दौर में गांधीजी 1934 में कांग्रेस की सदस्यता त्याग कर रचनात्मक कार्यक्रमों एवं राष्ट्र-निर्माण के कामों से जुड़कर नये समाज के निर्माण के काम में पूरी तरह व्यस्त हो गये थे।

सन् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया। ब्रिटिश सरकार ने इस युद्ध में भारत को शामिल करने का निर्णय ले लिया था। जबकि कांग्रेस पार्टी का विचार था कि बिना उनकी सहमति के ब्रिटिश सरकार भारत को युद्ध में झोंकने का निर्णय नहीं ले सकती है।

सन् 1941 में दो घटनाओं के बाद युद्ध का स्वरूप बदल गया। जून, 1941 में जर्मनी ने रूस पर व इसके 6 महीने बाद दिसंबर में जापान ने पर्लहार्बर (अर्थात् प्रकारांतर से अमेरिका) पर आक्रमण कर दिया। इन घटनाओं के फलस्वरूप युद्ध के क्षेत्र यूरोप के बाहर भी बनने लगे, और वास्तविक अर्थों में यह युद्ध विश्व-युद्ध में परिवर्तित हो गया।

जापान ने बहुत तेजी से मलाया और सिंगापुर पर कब्जा कर लिया। बर्मा भी (जो सन् 1937 के पूर्व तक भारत का हिस्सा था) जापान के कब्जे में चला गया तथा उसके बाद अगुमन व निकोबार पर भी जापान ने नियंत्रण कायम कर लिया। जापान का अगला कदम भारत पर आक्रमण करना हो सकता था। अर्थात् भारत भी अब युद्ध क्षेत्र बन जायेगा, इसकी संभावनाएं प्रबल हो गयी थीं।

अमेरिका ने (जो अब युद्ध में शामिल हो गया था) ब्रिटेन पर दबाव बनाया कि वह भारत के नेताओं से बातचीत कर रास्ता निकाले। दूसरी ओर चीन भी ब्रिटेन पर दबाव बना रहा था कि वह भारत को स्वतंत्र करने की दिशा में आगे बढ़े।

इन परिस्थितियों में सर स्टैफोर्ड कृप्स, एक मिशन के तहत भारत आये, जिसका उद्देश्य युद्ध के लिए भारत का समर्थन प्राप्त करना था, लेकिन घोषित रूप से वे भारत की आजादी के बारे में एक प्रस्ताव पर सबकी सहमति चाहते थे।

भारत के राजनीतिक गतिरोध को सुलझाने के लिए कृप्स मिशन ने देश को तीन भागों में बांटने की कल्पना की जिसमें से प्रत्येक में अलग ढंग की शासन-पद्धति होगी। प्रांतों को स्वतंत्र होने का भी प्रावधान था। प्रांतों को स्वतंत्र होने के अधिकार जैसे प्रावधान ने भारतीय संघ के स्वरूप के ऊपर प्रश्नचिह्न लगा दिया। इसी प्रकार हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को, युद्ध की समाप्ति के बाद सुलझाने की बात कर, पाकिस्तान बनाने का दरवाजा खुला रखा गया था। रियासतों की स्थिति के बारे में भी अस्पष्टता थी। कृप्स मिशन की विफलता के बाद कांग्रेस तथा ब्रिटिश सरकार के बीच आगे वार्ता की संभावना खतम हो गयी।

भारत के नेतृत्व के सामने दो सवाल एक साथ खड़े हो गये थे—एक तो देश को विदेशी शासन के नियंत्रण से मुक्त कराने की रणनीति तैयार करना। दूसरा भारत पर आसन्न जापानी आक्रमण का मुकाबला कैसे करें, इसकी तैयारी करना। उस समय ये दोनों प्रश्न गहराई से एक-दूसरे से जुड़ गये थे।

सितंबर, 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत के बाद से कांग्रेस में दो प्रकार की विचारधाराएं थीं। गांधीजी चाहते थे कि अंग्रेज तत्काल जायें तथा भारत इस युद्ध से अलग रहे। वे यह भी मानते थे कि स्वतंत्र भारत वार्ता द्वारा जापान के खतरे से मुक्त हो जायेगा। क्योंकि जापान का भारत की ओर बढ़ने का कारण यही था कि भारत इंग्लैण्ड का एक उपनिवेश था।

कांग्रेस में एक दूसरी धारा यह थी कि यदि अंग्रेज भारत को स्वतंत्र कर दे तो भारत लोकतंत्र के पक्ष में (अर्थात् मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर) इस युद्ध में शामिल होकर, फासिज्म/नाजीवाद तथा जापानी साम्राज्यवाद का विरोध कर सकता है। कांग्रेस में बहुमत इसी धारा का पक्षधर था।

कांग्रेस के बाहर देश में यह मानने वालों का भी एक वर्ग था कि यदि धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) की सेना, भारत में अंग्रेजों को हरा देगी तो भारत स्वतंत्र हो जायेगा। जर्मनी एवं जापान के साथ बात कर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस इसी लाइन पर बढ़ रहे थे।

ऐसे में, गांधीजी ने अहिंसा के सवाल को भारत की आजादी के साथ जोड़कर भारत की स्वतंत्रता के सवाल को विश्व शक्तियों की लड़ाई के दांव-पेंच के हिस्से के रूप में देखने से इनकार कर दिया था। जबकि अन्य विचारधाराएं, भारत की स्वतंत्रता को मित्र राष्ट्रों की जीत या धुरी राष्ट्रों की जीत के साथ जोड़ कर देख रही थीं।

अंग्रेज भारत क्यों छोड़े, इस पर गांधीजी का मत स्पष्ट था। 22 अप्रैल, 1942 को होरेस अलैक्जैन्डर को भेजे गये पत्र में गांधीजी ने लिखा कि "मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजों को इसी समय व्यवस्थित ढंग से भारत छोड़ देना चाहिए और वह जोखिम नहीं उठानी चाहिए, जो उन्होंने सिंगापुर, मलाया

और बर्मा में उठायी। ऐसे कदम का अर्थ होगा उच्च कोटि का साहस, मानवीय सीमाओं की स्वीकृति और भारत के प्रति न्याय करना। ब्रिटेन भारत की रक्षा करने में असमर्थ है और भारत की भूमि पर अपनी रक्षा करने में तो और भी अक्षम है।''

जापानियों के संभावित आक्रमण के संदर्भ में उनका विचार था कि ''अगर जापानियों के शिकार, यानी अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़कर चले जायें तो बहुत मुमकिन है कि जापान हिन्दुस्तान पर हमला करना ही न चाहे। लेकिन यह भी हो सकता है कि भारत के बंदरगाहों से अपने सामरिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए जापान हिन्दुस्तान पर हमला करना चाहे। उस हालत में मैं अपने लोगों को वही करने की सलाह दूंगा, जो कुछ करने की मैंने उन्हें आज तक सलाह दी है, यानी वे आक्रमणकारी के साथ दृढ़तापूर्वक अहिंसक असहयोग करें (न्यूज क्रानिकल के प्रतिनिधि को, 14 मई, 1942)

अमेरिका और ब्रिटेन के इस दावे पर कि वे सभ्यता एवं प्रजातंत्र की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं, गांधीजी ने कहा कि, ''अमेरिका और ब्रिटेन, दोनों जब तक यह दृढ़ निश्चय करके अपने घरों को ठीक नहीं कर लेते कि वे अफ्रीका तथा एशिया दोनों ही जगहों से अपना प्रभाव और सत्ता हटा लेंगे तथा रंगभेद की नीति का त्याग कर देंगे, तब तक इस युद्ध में हिस्सा लेने का उनके पास कोई नैतिक आधार नहीं है। जब तक श्वेत जातियों को श्रेष्ठ मानने का नासूर पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाता, तब तक उन्हें प्रजातंत्र की रक्षा तथा सभ्यता और मानव स्वतंत्रता की रक्षा कने की बात करने का कोई हक नहीं है।'' (समाचार पत्रों के साथ वार्ता, 16 मई, 1942)।

ब्रिटिश प्रस्ताव का एक महत्त्वपूर्ण अंश, पिछले दरवाजे से, दो-राष्ट्र के सिद्धांत को सहमति देना भी था। गांधीजी ने दो राष्ट्र के सिद्धांत का पूर्णतः खंडन करते हुए 25 अप्रैल, 1942 को कहा कि ''अब जबकि आक्रमणकारी दरवाजे पर हैं, भारत में एकता की पहले से कहीं अधिक जरूरत है। मेरी सबसे बड़ी इच्छा यही है कि उसके विरुद्ध और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए मिलकर संघर्ष किया जाये (बाम्बे क्रानिकल)। उन्होंने यह भी कहा कि ''मेरी पक्की राय है कि जब तक तीसरा पक्ष, यहां बाधक बनने को मौजूद है, एकता हो ही नहीं सकती। उसने यह बनावटी फूट पैदा की है, और वह इसे बनाये हुए है। जब तक वह मौजूद है, हिन्दू और मुसलमान दोनों, बल्कि वे सभी तत्त्व जो परस्पर विरोधी या असंतुष्ट मालूम होते हैं, हमेशा मदद के लिए उनका मुंह ताकेंगे और वह मदद उन्हें मिलेगी। उन्हें अपने देश की आजादी से अपना स्वार्थ ज्यादा बड़ा मालूम होता है।'' (हरिजन, 24.5.1942)

कृप्स मिशन की असफलता के बाद, कांग्रेस के लिए वार्ता का रास्ता बंद हो चुका था। अब भारतीयों के दृढ़ निश्चय को प्रकट करने का अवसर आ गया था। गांधीजी के आहवान पर भारत छोड़ो आंदोलन, भारतीय राष्ट्रीयता एवं भारतीय अस्मिता को प्रकट करने का माध्यम बन गया। अगस्त क्रांति ने भारत की उस चेतना को जनमानस में स्वीकार्य बना दिया था, जिस आधार पर भविष्य में स्वतंत्र भारत को अपने राष्ट्र का निर्माण करना था।

कृप्स मिशन के आने के पहले भी और आने के बाद भी, अंग्रेजों ने भारत की स्वतंत्रता के साथ तीन सवाल जोड़ दिये थे, जो बाद में भी बने रहे। प्रांतों की स्वायत्तता (या स्वशासन) का सवाल, साम्प्रदायिकता (एवं प्रकारांतर से पाकिस्तान निर्माण) का सवाल तथा रजवाड़ों का सवाल।

द्वितीय विश्वयुद्ध जब समाप्ति के कगार पर आ गया, तो भारत की स्वतंत्रता के लिए वार्ताएं पुनः शुरू हुईं और साथ ही ये सवाल भी बने रहे। शिमला कानफरेंस, कैबिनेट मिशन एवं लॉर्ड माउन्टबेटन द्वारा की गयी वार्ताएं इन प्रश्नों को समेटे रहती थीं। कांग्रेस नेतृत्व को ऐसा लगा कि यदि वे पाकिस्तान की मांग नहीं मानेंगे, और समय बीतता जायेगा तो प्रांतों का सवाल एवं रजवाड़ों का सवाल खड़ा कर अंग्रेज भारत के स्वरूप को पूरी तरह बिगाड़ देंगे।

कांग्रेस पार्टी के अंदर एक वर्ग पाकिस्तान स्वीकार करने को सन् 1942 के समय से ही तैयार था। ऐसे में मुस्लिम लीग द्वारा सीधी कार्यवाई के फलस्वरूप, जब साम्प्रदायिक हिंसा के दावानल ने भारत को बुरी तरह झकझोर दिया तो माउन्टबेटन के लिए भारत विभाजन की बात कांग्रेस नेताओं से मनवाना आसान हो गया। प्रांतों का और रजवाड़ों का मामला भारत के पक्ष में जा रहा था।

जब 1934 में गांधीजी ने कांग्रेस की सदस्यता छोड़ी थी, तब उसके बाद कांग्रेस पार्टी चुनाव व सत्ता की राजनीति में चली गयी थी तथा गांधीजी नये समाज के निर्माण व पूंजीवाद के विकल्प में नये राष्ट्र का निर्माण ग्राम स्तर से कैसे होगा, इस काम से जुड़ गये थे। भारत की स्वतंत्रता, राष्ट्र की अखण्डता एवं साम्प्रदायिक हिंसा की चुनौती का मुकाबला भी वे लोकशक्ति के माध्यम से करते रहे। इस प्रकार सत्याग्रह एवं वैकल्पिक रचना काम साथ-साथ चलता रहा। वे एवं कांग्रेस के नेता सलाह-मशविरे के लिए एकजुट होते थे जब राष्ट्र की स्वतंत्रता, अखण्डता या साम्प्रदायिक हिंसा का सवाल पूरे समाज का सर्वोपरि सवाल बन जाता था।

देश की स्वतंत्रता का समय आते-आते देश का राजनीतिक वर्ग दो धाराओं में स्पष्ट दिखने लगा था। एक वह जो राजसत्ता के माध्यम से अपेक्षित परिवर्तन लाने का पक्षधर था तथा दूसरी धारा गांधीजी की थी, जो अहिंसा, लोकशक्ति एवं आत्मनिर्भर गांवों के माध्यम से परिवर्तन के काम में लग गयी थी। सर्व सेवा संघ एवं सर्वोदय के लोगों ने गांधी की इसी विरासत को आगे बढ़ाने का दायित्व सँभाला। ❑

चम्पारण : गांधी का प्रथम प्रयोग क्षेत्र

❑ बद्रीनाथ सहाय

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका में अंतिम सत्याग्रह के सौ साल पूरे होने के अवसर पर प्रस्तुत है यह गाथा इस सहस्त्राब्दी के सबसे अनूठे प्रयोग की। –सं.

नील की खेती का प्रारम्भ 1778 से ही बिहार में हो चुका था। 1800 तक मुजफ्फरपुर जिले में नील की खेती की 12 कोठियां स्थापित हो गयीं। चम्पारण में 1802 में बाराकोठी, 1807 में पिपराकोठी, 1815 में तुरकौलिया कोठी, 1817 में मोतीहारी कोठी, 1822 में लालसरैया कोठी, फिर तो कोठियां ही कोठियां स्थापित होती गयीं।

बेतिया राज्य के राजा (अब पश्चिम चम्पारण) की उदारता और फिजूलखर्ची के कारण राज्य की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी। बेतिया राज्य के मैनेजर मिस्टर गिब्बन ने बेतिया राज्य को इंग्लैण्ड से 95 लाख रुपये का कर्ज दिलाया। शर्त थी कि बेतिया राज्य इंग्लैण्ड के उन अंग्रेजों को जिनके सहयोग एवं जमानत पर कर्ज प्राप्त हुआ था, अपने राज्य की कुछ भूमि नील की खेती हेतु बन्दोबस्त कर देगा। इस शर्त के अनुसार बेतिया राज्य ने 14 फैक्टरियों के लिए स्थायी रूप से भूमि बन्दोबस्त कर दी, ताकि कर्ज सधाने के लिए मालगुजारी आदि के रूप में उससे प्रति वर्ष साढ़े पांच लाख रुपये प्राप्त होने लगे। इस प्रकार प्राप्त भूमि पर अपना स्थायी प्रभुत्व देखकर नीलहे राज्य से समयानुसार अस्थायी भूमि भी बन्दोबस्त कराते रहे। वे आर्थिक रूप से सम्पन्न होते गये और पूरे जिले में अपना दबदबा भी बढ़ाते गये।

1897 तक चम्पारण में नील की 70 कोठियां स्थापित हो गयीं। इनमें 33 हजार कृषक-मजदूर काम करते थे। इनमें धांगड़-मुसहर जाति के मजदूर मुख्य रूप से शामिल थे, जो नील की 'महाई' जैसे श्रम-साध्य कार्य किया करते थे। प्रत्येक कोठी के पास इन नीलवरों द्वारा इन्हें बसाया गया था। हर कोठी के पास धांगड़-मुसहर टोली आज भी मौजूद है। कुल 95,970 एकड़ भूमि में नील की उपज होती थी। इन नीलहों को बेतिया राज्य से प्राप्त अपनी जिरात भी थी। इस जिरात का अनुबंध 30 वर्षों के लिए था। इसे 30-30 वर्षों के लिए बढ़ाया जाता था। इन्हें गांवों से मालगुजारी वसूली करने का अधिकार भी प्राप्त था। इसके लिए बेतिया राज्य से इन्हें कमीशन मिलता था। मालगुजारी वसूली अधिकार के कारण जनता का शोषण-दोहन तीव्रतर होता गया। कृषकों को नील की खेती तीन-कठिया प्रथा के अनुसार करनी होती थी।

इस घृणास्पद प्रथा के कारण कृषकों का भयंकर शोषण होता था। इस प्रथा के अनुसार रैयत को बीघा पीछे तीन कट्ठा की दर से अपनी सर्वोत्तम भूमि में नील की खेती करनी होती थी। नील की खेती करने के लिए नीलहे कृषकों से सट्टा लिखा लेते थे। कभी-कभी 20 वर्षों का सट्टा; कोई किसान सट्टा स्वीकार करने में असमर्थ होता, तो उसके लिए हर्जाना देने हेतु बाध्य था।

नील की खेती श्रमसाध्य तो थी ही फैक्टरी के अमलों द्वारा रैयतों के साथ कम धांधली नहीं की जाती थी। दस्तूरी के नाम पर उनकी मजदूरी का एक बड़ा हिस्सा काट लिया जाता। नील की खेती में जितने पैसे लगते थे, उसके अनुपात में उन्हें आमदनी नहीं थी। जबकि नील की खेती में साहबों को बड़ा मुनाफा था। एक तरफ वे मालों-माल हो रहे थे, दूसरी तरफ किसान पीस रहे थे। नीलहे किसानों को नील की खेती की अग्रिम राशि जरूर देते थे लेकिन यह ध्यान रखते कि रैयत उसे पूरा-पूरा लौटाने की स्थिति में न हो। इस प्रकार किसान कर्जदार भी थे, आसामी और गुलाम भी।

बैलगाड़ी के लिए जबरदस्ती सट्टा लिखवा लेना आम बात थी। रैयत को मामूली राशि पर अपनी बैलगाड़ी फैक्टरी के लिए मुहैया करना होता था। आये दिन फैक्टरी में रैयत के हल घेर लिये जाते, जबकि रैयत को अपनी खेती के लिए सबसे अधिक आवश्यकता होती थी।

किसानों को अपने पेड़ों (वृक्ष) की बिक्री की आधी रकम साहब की होती थी। बगैर साहब की अनुमति लिये कोई व्यक्ति अपनी भूमि के पेड़ को भी नहीं बेच सकता था।

साहब की धाक ऐसी कि जब वह अपने बंगले से बाहर निकलता तो किसान धरती पर लेट कर सलाम करते। सलामी के नाम पर उनसे रुपये वसूल किये जाते। साहब के बाग में फलने वाला फल क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के घर भेजे जाते, बदले में अपनी हैसियत अनुसार साहब को सलामी मिलती। बड़े दिन के अवसर पर प्रतिष्ठित व्यक्ति नजराना चढ़ाते।

इसके अतिरिक्त अमलों द्वारा तहरीर, फगुआई, दवातपूजा, रामनवमी, दशहरा के नाम पर विभिन्न प्रकार के 'टैक्स' वसूल किये जाते।

एक तरफ सामान्य से सामान्य एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों की यह स्थिति, दूसरी तरफ साहब के बंगलों का क्या कहना! दो बीघे भूमि के घेरे के अन्दर स्थित बंगले में हर मौसम में फूलने वाले फूलों तथा उसके बाहर अनेक प्रकार के फलों के पेड़ बंगले की शोभा बढ़ाते। मुख्यालय मोतीहारी में साहब के लिए पुस्तकालय, पोलो ग्राउंड था, घोड़ा रेस की सुविधाएं थीं। चर्च था, अन्य मनोरंजन के साधन थे। यानी इसी भूमि पर वे स्वर्ग का सुख भोग रहे थे।

साहब के बंगले के सामने से गुजरने वाली सड़क से आम आदमी नहीं चल सकता था। दूल्हे को भी घोड़ा से उतर छाता मोड़ लेना होता था। साहब की अपनी कचहरी थी। थाना-दारोगा की कोई पूछ नहीं थी। थोड़ी

गलती होने पर रैयत को कोड़े से पीटा जाता था। आर्थिक दण्ड भी किये जाते थे।

नीलहों द्वारा सताई जनता ने पहली बार उनके खिलाफ अठारहवीं सदी के सातवें दशक में प्रदर्शन किया था। कुछ छिटपुट हिंसक घटनाएं भी हुईं। इसका नतीजा भी निकला। मालगुजारी साढ़े सात रुपये प्रति बीघा से 12 रुपये प्रति बीघा हो गयी। इस प्रदर्शन एवं हिंसक घटनाओं के फलस्वरूप नीलहे झुके जरूर, लेकिन थोड़े ही दिनों के लिए। जनता में शिक्षा और संगठन का अभाव था, फलस्वरूप जनता विभिन्न तरह से सताई जाने लगी।

सन् 1900 के बाद नील की खेती लाभप्रद नहीं रही। ईख, धान, जई की खेती पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। नील की खेती में जो मुनाफा था, वह ईख, धान की खेती में नहीं था। इस घाटे की पूर्ति साहब अन्य तरीके से करने लगे। पहले मालगुजारी 4 रुपये बीघा थी। बीघा में तीन कट्ठा नील नहीं बोने के कारण 3 रुपया प्रति कट्ठा की दर से 9 रुपये तथा बीघा पीछे आम, लीची के नाम पर 2 रुपये, इस प्रकार प्रति बीघा 15 रुपये वसूल किये जाते। रसीद मात्र 4 रुपये की काटी जाती। किसान यह नाजायज राशि देने के लिए मजबूर थे। असीमित अत्याचार देख विरोध की आग सुलगने लगी। ऊपर के अधिकारियों के पास शिकायतें दर्ज हुईं। 1907 में वृहत् पैमाने पर अव्यवस्था फैली। तेलहारा कोठी का मैनेजर *ब्लूम फील्ड* जान से मार डाला गया। नीलवरों में दहशत छा गयी। नाजायज मालगुजारी वसूल करना कुछ हद तक बंद हुआ। रक्सौल के परेउआ गांव के गुलामन मियां ठकुराई, जटियाही गांव के खिरू साह तेली ने हिम्मत दिखलायी। हर्जाना नहीं दिया और अमलों को पीटा भी। इसकी खबर पास-पड़ोस के गांवों में फैलते ही नीलहे सजग हो गये।

नीलहों को उच्च पदस्त अधिकारियों के सहयोग से गरीब और पिछड़ी जनता के शोषण में पूरी कामयाबी मिलती थी। 1913 में लॉर्ड हार्डिंग पटना आये। उन्होंने चम्पारण के नीलहों को रैयत के साथ अच्छे व्यवहार का प्रमाण-पत्र दे दिया। जवाब में ब्रजकिशोर प्रसाद (प्रभावतीजी के पिता, जयप्रकाशजी के स्वसुर) ने 1914 में बिहार प्रांतीय अधिवेशन के अपने भाषण में नीलहों का काला चिट्ठा खोलकर रख दिया। 1915 के अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से नीलहों और रैयत के बीच बुरे सम्बन्धों की जांच के लिए सरकारी और गैर-सरकारी व्यक्तियों की एक समिति बनाने की मांग की। लेकिन उनका शोषण और अत्याचार चलता ही रहा।

ऐसे समय में गांधीजी का चम्पारण में आगमन हुआ। मुरली भितिहरवा (आज पश्चिम चम्पारण) के पं. राजकुमार शुक्ल के प्रयास से चम्पारण के किसानों की दयनीय हालत अपनी आंखों देखने महात्मा गांधी 15 अप्रैल, 1917 को मोतीहारी पहुंचे। अगले दिन निलहों के मातहत पड़ने वाले कुछ गांवों का भ्रमण किया और उसी दिन जिलाधीश मि. हेकॉक द्वारा गांधीजी को चम्पारण छोड़ देने का आदेश मिला। गांधीजी ने इस आदेश को जनता के हक में पालन करने से नम्रतापूर्वक इनकार कर दिया। 17 अप्रैल के दूर-दूर से आये किसान कोठी वाले साहबों के विरुद्ध अपनी शिकायत दर्ज कराते रहे। सरकार के सामने स्थिति भयंकर थी। उसने 18 अप्रैल को गांधीजी पर नोटिस और सम्मन तामिल किया। यह खबर जंगल में आग की तरह फैल गयी। मोतीहारी में ऐसी भीड़ हुई जैसी कभी नहीं हुई थी। कचहरी के दरवाजे का शीशा फूटकर चकनाचूर हो गया। गांधीजी ने अपनी वकालत खुद की। मजिस्ट्रेट ने 21 अप्रैल को आदेश निर्गत करने को कहा। इस बीच वह एक सौ रुपये की जमानत पर गांधीजी को छोड़ने के लिए तैयार था। गांधीजी ने जमानत और जमानतदार प्रस्तुत करने में असमर्थता व्यक्त की। मजिस्ट्रेट ने कहा, ''अगर आप जमानत नहीं दे सकते, आप अपनी व्यक्तिगत पहचान प्रस्तुत करें।'' गांधी ने इसे भी प्रस्तुत करने से इनकार किया तो मजिस्ट्रेट ने कहा, ''बहुत अच्छा 21 अप्रैल को आइए, उस दिन मैं आपका निर्णय दूंगा।''

19 अप्रैल से बड़ी संख्या में किसान मोतीहारी आने लगे और सर्वश्री राजेन्द्र बाबू, धरणीधर बाबू, अनुग्रह बाबू, रामनवमी बाबू जैसे वरिष्ठ सहयोगियों से अपनी शिकायतें दर्ज कराते रहे।

20 अप्रैल को गांधीजी को सूचना मिली कि ले. गवर्नर के आदेश से उनके विरुद्ध मुकदमा उठा लिया गया। कलक्टर ने कहा, ''आप मुझसे जब मुलाकात करना चाहें, कर सकते हैं।'' चम्पारण में सविनय अवज्ञा की पहली जीत हुई।

850 गांवों से 60 कोठी वालों के खिलाफ 40 हजार शिकायतें दर्ज हुईं। 22 अप्रैल को गांधीजी बेतिया पहुंचे, जहां 10 हजार लोगों की भीड़ हुई। गांधीजी ने स्वयं कई कोठियों का भ्रमण किया और रैयतों की दुर्दशा अपनी आंखों देखी।

कोठी वाले और स्थानीय अधिकारी गांधीजी के पीछे बुरी तरह पड़े हुए थे। चम्पारण में गांधीजी की उपस्थिति से नीलहे साहबों तथा अधिकारियों का रुआब घटता जा रहा था। कुछ ने ले. गवर्नर से मिलकर गांधीजी की जांच के विरुद्ध शिकायत की, जांच चलती रही।

4 जून को ले. गवर्नर के बुलावे पर गांधीजी ने राँची में उनसे मुलाकात की, दो दिनों तक उनसे बातें होती रहीं। गवर्नर गांधीजी की बातों से बहुत प्रभावित हुए और सरकार की ओर से एक जांच समिति गठित करने की घोषणा की, समिति के एक सदस्य के रूप में स्वयं गांधीजी सम्मिलित किये गये। विशद चर्चा के बाद 3 अक्टूबर, 1917 को समिति ने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर कर दिये। 1 मई, 1918 को चम्पारण एग्रेरियन एक्ट स्वीकृत हो गया। इसके अनुसार तीनकठिया प्रथा की समाप्ति हो गयी और इसे गैरकानूनी घोषित किया गया। बैलगाड़ी के लिए सट्टा की उचित दर तय हुई। चम्पारण की जनता ने→

जे. पी. हिन्दुस्तान का षड्यंत्री अव्वल

'आजाद दस्ता' अगस्त क्रांति का 'रक्त-कमल'

1941 की 18 अक्टूबर को हिन्दुस्तान के तीन अखबारों को छोड़कर सभी में मोटी-मोटी सुर्खियों में छपा :

'जयप्रकाश हिन्दुस्तान का षड्यंत्री नंबर एक है।' उसकी पार्टी छिपे तौर पर षड्यंत्र करने जा रही है कि किस तरह देश में हिंसक क्रांति की जाय।

'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'फ्री प्रेस' को छोड़कर देश के सभी बड़े अखबारों ने सरकार के इस प्रचार को खूब सजाकर छापा और कुछ खुशामदी अखबारों ने जयप्रकाश की कड़ी आलोचना भी की।

हुआ यह था कि 1940 के अंत में जयप्रकाश जब हजारीबाग जेल से छूटकर बाहर आया तो उसने सोचा कि अबकी दफा व्यक्तिगत सत्याग्रह करके या भाषण आदि करके गिरफ्तार नहीं होना है। कुछ दिन यों ही छिपकर काम करना है। यह छिपे-छिपे आजादी का आंदोलन चलाने लगा, पर सरकार ने बम्बई में उसे गिरफ्तार कर ही लिया और भेज दिया देवली कैम्प जेल।

एक दिन प्रभावती देवली में जयप्रकाश से मिलने गयीं। जयप्रकाश ने एक पत्र उनके लिए और दो पत्र अपने साथी पुरुषोत्तम विक्रमदास के लिए लिखे थे। इन पत्रों को प्रभावती की तरफ बढ़ाया, पर प्रभावती ने वे पत्र नहीं उठाये। उठा लिया खुफिया अफसर ने। यों वे जा पहुंचे सरकार के पास, जिसने उनके कुछ अंशों के फोटो लेकर अखबारों में छपा दिया।

जयप्रकाश ने इन पत्रों में लिखा था कि सोशलिस्ट पार्टी किस तरह गुप्त रीति से अपना आंदोलन चलाये, गुप्त अखबार निकाले और विदेशों से संपर्क कैसे साधे। कम्युनिस्ट नजरबंदों के कारनामे भी जाहिर किये थे।

इन पत्रों को लेकर सरकार ने हंगामा मचाया। उसमें प्रभावती का नाम भी घसीटा गया तो गांधीजी ने एक वक्तव्य में कहा—'जयप्रकाश के दृष्टिकोण से उनकी पत्नी का कोई संबंध नहीं। प्रभावती भारतीय राजनीति में मेरे दृष्टिकोण को मानती हैं। जयप्रकाश ने कभी अपने विचार उस पर नहीं लादे।'

इसके बाद जयप्रकाश ने पचास साथियों के साथ भूख-हड़ताल की कि देवली कैम्प टूटना चाहिए। इस हड़ताल में कम्युनिस्टों ने उसका साथ नहीं दिया।

दिन हफ्तों में बदले, सरकार टस-से-मस नहीं हुई। देश में जगह-जगह सरकार विरोधी प्रदर्शन हुए। होते-होते एक महीना हो गया। इकतीस दिन, बत्तीस दिन हो गये। सरकार चुप। एकदम चुप। आखिर तैंतीसवें दिन गांधीजी ने जयप्रकाश को खबर भेजी—''अनशन छोड़ो, सरकार ने तुम्हारी माँगे मंजूर कर ली है।''

जयप्रकाश की मांगों में एक मांग यह भी थी कि राजनीतिक बंदी 'ए' श्रेणी पाने के अधिकारी हैं और उन्हें अपने-अपने क्षेत्र की जेलों में रखा जाना चाहिए।

तब देवली कैम्प जेल टूटी। कुछ लोग रिहा कर दिये गये। कुछ दूसरी जेलों में भेज दिये गये। जयप्रकाश को देवली से हटाकर भेज दिया गया हजारीबाग जेल।

कैदी तोड़ रहे हैं जंजीरें!

सन् बयालीस की दीवाली। नौ नवंबर की तारीख।

हजारीबाग जेल में 42 दीपकों का थाल सजाये दीवाली का जुलूस घूम रहा है। लोग गा रहे हैं—दीवाली फिर आ गयी सजनी! वार्ड-वार्ड में जुलूस घूम रहा है। बाबू वार्ड, पंजाबी वार्ड, छोकरा वार्ड।

कैदी भी मस्त। वार्डर भी मस्त। जेल के दूसरे कर्मचारी भी मस्त। ऐसा जश्न तो यहां कभी नहीं हुआ था। लगता ही नहीं कि यह जेल है।

उधर एक कैदी राग अलाप रहा है—

'यह हिन्द का जिन्दा काँप रहा है, गूंज रही हैं तकबीरें। उकताये हैं शायद कुछ कैदी, जो तोड़ रहे हैं जंजीरें।।'

और सचमुच, इस नाच-गान और

→चैन की सांस ली।

गांधीजी की 'सविनय अवज्ञा' अवधारणा का भारत में यह पहला प्रयोग था। इसके सूत्र दक्षिणी अफ्रीका में चले अहिंसक आंदोलन से जुड़े थे। विरोधी के प्रति किसी भी प्रकार की शत्रुता को हृदय में स्थान न देकर अन्याय और असत्य का सम्पूर्ण विरोध आंदोलनों एवं क्रांतियों के इतिहास में एक नया पाठ था।

यह एक विजयी प्रयोग था। समय पड़ने पर अवज्ञा कर्तव्य है, किन्तु विनय और अहिंसा की पृष्ठभूमि में ही उस कर्तव्य का वास्तविक गौरव है। गांधीजी की यह सीख युगों-युगों तक मनुष्यता को अनुप्राणित करती रहेगी। ❑

उत्सव के नाटक के पर्दे के पीछे जेल के छः कैदी दीवार के पार!

सुबह जब पता चलता है तो 'पगली'—जेल की घंटी—बजती है। जेल का कोना-कोना छान मारा जाता है—पर न जयप्रकाश ढूंढे मिले हैं, न योगेन्द्र शुक्ल, न सूर्यनारायण सिंह मिलते हैं, न रामनन्दन मिश्र। शालिग्राम सिंह और गुलाबचन्द्र भी गायब।

घोर जंगल के बीच बनी हुई जेल। इतनी ऊंची चहारदीवारी। चारों ओर तैनात बन्दूकधारी वार्डर और चहारदीवारी पर लगी पांच मील दूर तक रोशनी फेंकने वाली लाइट।

फिर भी छः कैदी, मशहूर कैदी सबकी आंखों में धूल झोंककर लापता हो गये। जेल अधिकारी सन्न। सरकार सन्न। अब तो शेर हाथ से निकल ही गया। लाठी पटकने से क्या होगा?

जयप्रकाश लम्बे अनशन के बाद हजारीबाग जेल में दुबारा आया तो शरीर बहुत कमजोर था। साइटिका का पुराना रोग उभड़ आया। चलने-फिरने में मजबूरी थी। बापू के कहने से फलाहार शुरू किया था, पर स्वास्थ्य में विशेष सुधार नहीं हो रहा था।

फिर भी उसने अपने को जेल के अनुकूल बना लिया। व्यवस्थित रूप से खाना-पीना, रहना, समाजवाद का शिक्षण क्लास चलाना। अचानक सुना कि 8 अगस्त को गांधी ने 'करो या मरो' का आह्वान किया है। आनन-फानन में सैकड़ों-हजारों स्त्री-पुरुष जेल में बंद कर दिये गये। जगह-जगह दमन-चक्र शुरू हो गया। आर. टोटनहम की गोरी सरकार भी मंजूर करती है कि 'इस विद्रोह में यह केवल पहला अवसर था, जब सरकार ने पहल की।'

जयप्रकाश क्रांतिवीर जयप्रकाश का जी भीतर से छटपटाने लगा—ऐसा बढ़िया क्रांति का मौका और मैं यहीं जेल में पड़ा सड़ रहा हूं। नहीं मुझे बाहर जाकर ब्रिटिश सरकार को नाकों चने चबवाने हैं।

सेना में विद्रोह उकसाने के जुर्म में बंद डामली कैदी सरदार सुच्चा सिंह थे। वे एक बार अपने साथियों के साथ यहां से फरार हुए थे। बाद में फिर पकड़कर यहीं बंद कर दिये गये थे। उनके अनुभवों का जयप्रकाश ने लाभ लिया।

पांच साथी उन्होंने साथ के लिए चुने और जगदीश बाबू जैसे कुछ पक्के साथियों को सहेजा कि दीवाली के उत्सव का ऐसा माहौल बनाये रखो कि किसी को पता ही न चल पाये कि कुछ लोग जेल से गायब हो रहे हैं। दाढ़ी आदि बढ़ाकर शक्ल-सूरत में ही हेर-फेर कर लिया। पहनने के लिए कुछ कपड़ों और खाने-पीने को कुछ पैसों आदि का प्रबंध भी कर लिया।

बस, आधी रात के समय 6 मिनट के भीतर 6 कैदी दीवार फांदकर जंगल में चलते बने।

जंगल से जंगल में और जंगल से?

जेल से तो निकल आये, पर जंगल? एक जगह वनराज की गुर्राहट सुन पड़ी। एक जगह नाले में जा गिरे, कपड़े पानी में तर। कंप-कंपाती सर्दी। जयप्रकाश को साइटिका की बीमारी। चलने में मुसीबत। अंधेरी रात। कहीं कंटीले पेड़, कंटीली झाड़ियां। कहीं रोशनी से बचने के लिए छाती के बल रेंगना पड़ रहा है। कहीं कुछ, कहीं कुछ। पर भागना, भागना, भागना है, भले ही पैर घायल है, शरीर में कांटे चुभ रहे हैं। रात भर यह दौड़-धूप जारी रही।

संयोग से सलाई भी रामनन्दन मिश्र के पास। सूखे पत्ते इकट्ठे कर थोड़ी देर सेंका अपने को। फिर आगे बढ़े।

वीरों की यह बाट रे भाई, रुकने का है काम नहीं!

अभी तक अंधेरे में भटक रहे थे। पौ फटी तो आगे बढ़ने पर सड़क देखी। उसके किनारे छिप-छिपकर आगे बढ़े। आंतें कुड़बुड़ा रही थीं। करौंदा, झरबेरी, गूलर से क्या होता? पैसों की गठरी जेल में छूट गयी थी। शुक्लजी के पास एक चवन्नी निकल आयी। कहीं से चूड़ा और नमक-मिर्च ले आये। आधा खाया, आधा फिर से बाँध लिया। सौ का एक नोट रामनन्दन के कुरते के कालर में मिला था, पर वह टूटेगा कहां? कदम-कदम पर तो पकड़े जाने का डर!

एक जगह गरम पानी का सोता मिला। बड़े प्रेम से सबने नहाया। खून से लथपथ पैरों को रगड़-रगड़कर धोया। बड़ी राहत मिली। पर अब जयप्रकाश से तो एक कदम नहीं चला जाता। लिहाजा, कभी उन्हें कंधे पर बैठाकर ले चले, कभी बांहों की डोली पर।

रास्ते में शालिग्राम के परिचय का एक गांव मिला। एक परिचित ने कहा—'गांव में मत जाइये। आप लोगों के फरार होने का शोर है।'' उसने कुछ व्यवस्था की।

सबने वेष बदले। चलने में अशक्त जयप्रकाश, रामनन्दन, गुलाली एक बैलगाड़ी पर बैठे। बाकी तीन कंधे पर कुल्हाड़ी रखे अगल-बगल चलने लगे। गया से शुक्लजी, सूरज और गुलाली गये उत्तर बिहार, शेष तीन चल पड़े काशी की ओर।

रामनन्दन की ससुराल मिली। वहां से तरोताजा हो आगे बढ़े। करवंदिया स्टेशन पर ट्रेन पकड़कर मुगलसराय। अखबार देखा तो लिखा था—जयप्रकाश को पकड़वाने के लिए दस हजार रुपया पुरस्कार!

काशी में जयप्रकाश कभी फुलदेव सहाय के यहां टिका, कभी बाबू ज्योतिभूषण गुप्त के यहां। कभी राय सत्यव्रत के यहां तो कभी और कहीं। अजमतगढ़ महल में मर्दाने में रहना कठिन था, तो जनाने में 'ससुराल के पंडितजी' के रूप में रहना पड़ा।

और नाना रूप धारण करके जयप्रकाश अगस्त-आंदोलन चलाने लगा। कभी कहीं से, कभी कहीं से।

'भारत छोड़ो' आंदोलन का सेनानी

अगस्त 1942 में गांधी और सभी बड़े नेताओं की गिरफ्तारी के बाद देश में खुली बगावत मच गयी। भारत-मंत्री ने उसी समय एक शरारत-भरा बयान रेडियो पर सुना दिया कि 'कांग्रेस बगावत पर आमादा है। जनता

रेल की पटरियां उखाड़ रही हैं। थानों पर कब्जा कर रही हैं। यह हुकूमत को ठप करना चाहती है।

गांधीजी ने कह दिया था कि नेता जेल में बंद हों, तो हर आदमी अपने को नेता माने और जो उचित लगे सो करे। हां, हिंसा न करें। जनता समझी कि भारत-मंत्री ने जो कार्यक्रम बताया है, वही सही है।

भारत सरकार ने कांग्रेस को बदनाम करने के लिए दो किताबें छापीं—'कांग्रेस रेसपांसिबिलिटी फॉर डिस्टरबेंसेस 1942-43' (1942-43 के उपद्रवों के लिए कांग्रेस की जिम्मेदारी) और 'कारस्पांडेंस विद मि. गांधी' (श्री गांधी के पत्र-व्यवहार)। इसमें उसने कहा कि 'भारत छोड़ो' नामक जन-आंदोलन का एक ही उद्देश्य है—'पूरी सरकार का काम-काज ठप करना और अंग्रेजों के युद्ध-प्रयत्नों में बाधा डालना।'

सरकार ने जो दमन-चक्र चलाया और आर्डीनेंस जारी किये, उनको देखकर 1944 में गांधी को लिखना पड़ा था—''आज वाइसराय के महल से जो अध्यादेश जारी किये जा रहे हैं, उनके सामने रौलट एक्ट का काला कानून भी मात हो जाता है।''

हां, तो इसी मौके पर, जब चारों ओर उपद्रव और दमन का दौर चल रहा था, तो देश के बहुत-से जवां-मर्द दिल से महसूस कर रहे थे कि काश, इस समय जयप्रकाश बाहर होता तो राजनीतिक क्रांति का हमारा सपना निश्चय ही पूरा हो जाता।

और तभी जयप्रकाश हजारीबाग जेल से कूदकर बाहर आ गया। आते ही उसने अपनी बिखरी टोली को संगठित करना शुरू किया। दमन से कुचली और निराश जनता के बैठे हुए दिलों में उसने क्रांति की चिनगारी फूंकनी शुरू कर दी। खुली और गुप्त गश्ती चिट्ठियां जारी कर दीं।

जयप्रकाश ने लिखा कि 'हमने थानों, कचहरियों, खजानों और स्टेशनों पर कब्जा करके मान लिया कि हमने मैदान फतह कर लिया। इसी से सरकार को हमें कुचलने का मौका मिल गया। हम पहले सही इनकलाबी सरकार बनाकर सत्ता हथिया लेते तो हमारी आज की-सी हालत न होती। खैर, जो हुआ सो हुआ, अब हम 'आजाद दस्ते' बनाकर लड़ेंगे और आजादी हासिल करके रहेंगे। इस तरह जे. पी. का 'आजाद-दस्ता' अगस्त क्रांति का 'रक्त-कमल' था।

जयप्रकाश ने सारे देश में 'आजाद दस्ते' खड़े करने की तैयारी की। उसका कहना था कि देश में 250 जिले हैं और हर जिले में 20 थाने। हर थाने पर धुन के पक्के पांच नौजवान भी मिल जायें, तो बड़ी आसानी से क्रांति की जा सकती है। एक हथौड़ी, एक छेनी, एक आरी, एक रेती, कुछ गज तार और रस्सी, एक कुदाली, एक लाठी और एक सीढ़ी ही एक-एक जवान के पास हो, तो इतने से ही अंग्रेजी साम्राज्यशाही की नींव हिलायी जा सकती है। रिवाल्वर, पिस्तौल, बम के बजाय ये छोटे-मोटे औजार ही बहुत काफी हैं।

42-43 के उपद्रवों की जिम्मेदारी कांग्रेस पर थोपते हुए भारत सरकार टोटेनहम रिपोर्ट में लिखती है—''संघर्ष के प्रारम्भ से ही कांग्रेस समाजवादी दल ने (जो मुख्य कांग्रेस दल के अंतर्गत एक समूह है तथा कांग्रेस का आवश्यक अंग है) बम्बई को अपना केन्द्र बनाकर महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। नवंबर के प्रारम्भ में जयप्रकाश नारायण (यह वही व्यक्ति है, जिसे 1941 में देवली नजरबंद केन्द्र से पत्र चुराते हुए पकड़ा गया था तथा जिसने उन पत्रों में 'सत्याग्रह के खिलवाड़' की निन्दा की थी और एक ऐसी गुप्त शाखा की स्थापना के लिए अनुरोध किया था, जो अहिंसा के सिद्धान्त में तिलभर भी विश्वास न रखती हो) के हजारीबाग जेल से भाग जाने के कारण कांग्रेस के इस गरम दल का प्रभाव और भी अधिक बढ़ गया। जयप्रकाश नारायण इस आंदोलन के पथ-प्रदर्शक के रूप में निरंतर अधिक भाग लिया। इस समय तक यह आंदोलन एक क्रांतिकारी गुप्त आंदोलन का रूप धारण कर चुका था। आतंकवाद की सारी बातों का इस आंदोलन में समावेश हो गया था।'

जयप्रकाश कहीं अप-टू-डेट साहब, कहीं सेठ, कहीं जमींदार, कहीं वज्र देहाती किसान जैसे नाना रूप बनाकर अपने साथियों से बराबर सम्पर्क साध रहा था। सरकार की चतुर खुफिया पुलिस की आंख में धूल झोंककर आजाद दस्तों का संगठन करता रहा। देश के कई स्थानों के बाद उसने नेपाल को अपना केन्द्र बनाया।

नेपाल में रहते हुए कुछ ही दिन हुए कि सरकार को भनक लग गयी। जयप्रकाश, लोहिया आदि पकड़ लिये गये, लेकिन आजाद दस्ते को खबर मिली और उसने वाकायदा हमला करके उन लोगों को हनुमान नगर कारा से छुड़ा लिया।

बर्मा के रास्ते वह सुभाष बाबू से भी सम्पर्क साधने को तैयार था, पर उधर न जा सका, चल पड़ा लाहौर को और एक गद्दार पत्रकार से खबर पाकर 18 सितंबर, 1943 को मुगलपुरा स्टेशन पर सरकार ने उसे गिरफ्तार कर लिया।

जयप्रकाश के हाथ 'स्ट्रेप' से बाँध दिये जाते हैं और मोटर में डालकर अगस्त-आंदोलन का यह सेनानी लाहौर के नारकीय किले में बंद कर दिया जाता है।

लाहौर की यातनाएं

लाहौर का किला मशहूर है राजबंदियों को सताने के लिए। 20 अक्टूबर, 1943 से 10 दिसंबर, 1943 तक रोज जयप्रकाश को तपना पड़ा उस भट्ठी में। इन दिनों जयप्रकाश को सताने का पूरा-पूरा आयोजन किया गया, यद्यपि जयप्रकाश ने पहले ही साफ कह दिया था कि 'हाल की गुप्त कार्रवाइयों को छोड़कर और जो पूछेंगे,

उसका मैं जवाब दूंगा। *साथ ही एक बात मैं बता दूं कि भारत में कायम अंग्रेजी सल्तनत का मैं दुश्मन हूं। देश की आजादी के लिए मैं लड़ता रहा हूं और तब तक लड़ता रहूंगा, जब तक वह हासिल न हो जाय या मेरी मौत न आ जाय।'*

पंजाब, बंगाल, बिहार के खुफिया अफसर बैठे हैं और जयप्रकाश से पूछताछ चल रही है। वे कहते हैं—'हमें जब तक वे खबरें न मिल जायेंगी जो हम चाहते हैं, तब तक हम छोड़ने वाले नहीं।' उधर जयप्रकाश कहता है—'आप लोग मेरी जान भले ही निकाल लें, किन्तु दबाव डालकर मुझसे बातें नहीं निकाल सकते।'

पर सरकारी अधिकारी भला क्यों सुनने लगे जयप्रकाश की बात? सन् 1937 में स्तालिन के इशारे पर रूस में हजारों-लाखों निरपराध लोग 'क्रांति-विरोधी' कहकर जेल में बंद कर दिये गये थे। उनसे झूठा कसूर कबूलवाने के लिए अधिकारियों ने, खुफिया पुलिस ने जैसे भयंकर जुल्म ढाये थे, ठीक वैसे ही जुल्म जयप्रकाश पर ढाये जाने लगे। आस्ट्रिया के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलेक्जेंडर सैमेनोविच वाइजवर्ग ने 'दी एक्यूज्ड' नाम की अपनी पुस्तक में जिन नारकीय यातनाओं की हृदयबेधी कहानी लिखी है, उन्हीं की यहां भी पुनरावृत्ति की जाने लगीं।

अधिकारी रोज जयप्रकाश को दफ्तर में बुलाते। रोज घुमा-फिराकर वे ही सवाल दोहराते। कभी मुलायमियत से, कभी सभ्यतापूर्वक। कभी त्योरी बदलकर, कभी गुस्सा दिलाते हुए।

शुरू में यह क्रम कुछ घंटों तक चला। धीरे-धीरे इस पूछताछ की मीयाद बढ़ायी जाने लगी। नौबत यहां तक आयी कि जयप्रकाश को न दिन में सोने दिया जाता, न रात को। जेल से दफ्तर, दफ्तर से जेल। रात-दिन, वक्त-बेवक्त यह क्रम चलने लगा।

जयप्रकाश ने लाहौर हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस को अपने पत्र में इसका विवरण देते हुए लिखा कि "ऐसी हालत में मैं क्या खाक सो पाता। जरा झपकी लगती कि मुझे जगा देते और आफिस में ले जाते। लगातार कई दिनों तक ऐसा करने पर मुझे लगता कि दिमाग फट गया है, नसें चूर हो गयी हैं। उफ, कैसी यंत्रणा।"

सरकार ने पहले तो यही छिपाने की कोशिश की कि जयप्रकाश कहां है। बाद में जब खबर उड़ी कि उसे लाहौर के किले में तरह-तरह की यातनाएं दी जा रही हैं, तो पंजाब में भी विरोध शुरू हुआ, देश के दूसरे भागों में भी। बम्बई के बैरिस्टर पारडीवाला ने लाहौर पहुंचकर 'हेबियस कार्पस' दरख्वास्त दी। उसमें जयप्रकाश को अदालत में हाजिर करना पड़ता। तब सरकार ने पारडीवाला को ही पकड़कर जेल में डाल दिया।

श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने जीवनकाल कपूर वकील के मार्फत 'हेबियस कार्पस' की दरख्वास्त दी, तो सरकार ने जयप्रकाश को 'सेक्योरिटी प्रिजनर' से 'स्टेट प्रिजनर' बना दिया। दरख्वास्त उठाते ही फिर 'सेक्योरिटी प्रिजनर' बना दिया।

जयप्रकाश पर राजद्रोह, षड्यंत्र आदि के मुकदमे चलाने की खबर उड़ी तो देश के ही नहीं, विदेश के भी नामी-गिरामी वकील पैरवी के लिए तैयार हुए। तब सरकार ने मुकदमा चलाने की बात ही गोल कर दी। कुछ दिन बाद डॉक्टर लोहिया जयप्रकाश के साथ लाकर रख दिये गये।

पंजाब में जयप्रकाश को बहुत सताया जा रहा है, यह अफवाह जब जोर पकड़ने लगी और विरोधी प्रदर्शन होने लगे, तब जयप्रकाश और लोहिया को लाहौर से आगरा जेल भेज दिया गया।

धीरे-धीरे परिस्थिति बदलने लगी। ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधि मंडल—'कैबिनेट मिशन' भारत आया। उसके सदस्य सोरेनसन जयप्रकाश से मिलने आगरा जेल पहुंचे। गांधीजी ने मिशन की ईमानदारी की कसौटी के लिए जयप्रकाश और लोहिया की रिहाई की मांग की।

होम-मिनिस्टर जयप्रकाश से मिले, तो वे जयप्रकाश की इस स्पष्ट बात से बहुत प्रभावित हुए कि *"हम आजादी लेकर रहेंगे। अहिंसा से मिली तो वाह-वाह, नहीं तो हम हिंसा से भी आजादी लेने की कोशिश करेंगे।"*

लोगों को अचम्भा भी हुआ और खुशी भी, जब 11 अप्रैल, 1946 को जयप्रकाश और लोहिया दोनों मुक्त कर दिये गये। देश ने पूरे उत्साह से इन दोनों क्रांति-वीरों का स्वागत किया।

अगस्त आंदोलन के सेनानी जयप्रकाश उनके साथ लोहिया, अच्युत पटवर्धन आदि ने गोरी सरकार को यह महसूस करा दिया कि दमन लाख हो, हिन्दुस्तान आजादी लेकर रहेगा। ❑

(भारत छोड़ो आंदोलन के सेनानी जयप्रकाश' से साभार)

श्रद्धांजलि

- 1 अगस्त, लोकमान्य तिलक पुण्यतिथि पर लोकमान्य को नमन व हार्दिक श्रद्धांजलि।
- 'भारत छोड़ो', 'करो या मरो' आंदोलन एवं 'अगस्त क्रांति' के शहीदों व दिवंगत नेताओं खासकर अच्युत पटवर्धन जिन्होंने सन् 1942 की क्रांति में जे. पी. के साथ मिलकर अहम भूमिका अदा की, उनकी पुण्यतिथि 5 अगस्त पर, उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि।
- 6 अगस्त, हिरोशिमा दिवस पर अणुबम से मारे गये हिरोशिमा के हजारों दिवंगतों को विनम्र श्रद्धांजलि।
- 7 अगस्त, रवीन्द्रनाथ टैगोर की पुण्यतिथि पर उन्हें नमन व श्रद्धांजलि।
- 15 अगस्त, महादेवभाई देसाई को उनकी पुण्यतिथि पर सर्व सेवा संघ एवं 'सर्वोदय जगत' की ओर कोटिशः नमन व श्रद्धासुमन।

आधी दुनिया

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं का योगदान

❑ डॉ. रेणु कुमारी

भारतीय राजनीति में गांधीजी का अवतरण एक नये युग की शुरुआत थी। वे पहले राजनेता हुए जिन्होंने महिलाओं की शक्ति को पहचाना और उसे आजादी की जंग के लिए आवश्यक माना। परम्परा की बेड़ियों में जकड़ी हुई पर्दानशीन महिलाओं में गांधीजी के आह्वान से नवजीवन का संचार हुआ। सामाजिक कुरीतियों से भय खाने वाली महिलाएं अब निर्भय होकर ब्रिटिश सरकार को टक्कर देने के लिए मैदान में आ डटीं। एक तरफ इससे सामाजिक कुरीतियों की नींव हिलने लगी तो दूसरी तरफ महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ा और वे सशक्तीकरण के मार्ग पर आरूढ़ होने लगीं। यहां तक कि समाज की निम्न वर्ग की अशिक्षित महिलाएं भी गांधीजी के आंदोलन में शरीक होने लगीं। इन महिलाओं ने गांधीजी के आंदोलन के दोनों पक्षों (असहयोग और रचनात्मक कार्यक्रम) में अपनी भागीदारी निभायी। उन्होंने अपने आभूषण कोष में दान दिया, खद्दर बेची, विदेशी वस्त्र का त्याग किया, शराब की दुकानों पर धरना दिया, पुलिस-प्रशासन से प्रताड़ित हुईं और जेल गयीं।

1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन पर आयोजित होने वाले स्वागत समारोहों के बहिष्कार का निर्णय कांग्रेस ने लिया था। कांग्रेस के इस निर्णय का बिहार की महिलाओं ने घूम-घूमकर प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने जनसभाओं के माध्यम से कांग्रेस के इस संदेश को जन-जन तक पहुंचाया। पटना में सावित्री देवी, सी.सी. दास की पत्नी तथा उर्मिला देवी ने महिलाओं में जागरण का संचार किया। परिणामस्वरूप 22 दिसंबर को जब राजकुमार का पटना में आगमन हुआ तब शहर में हड़ताल रही। सावित्री देवी को इस प्रोपगंडा कार्य के लिए तीन महीने की कैद की सजा सुनाई गयी।

भागलपुर के दीपनारायण सिंह की पत्नी श्रीमती लीला सिंह कांग्रेस की सक्रिय कार्यकत्री थीं। 1921 ई. में कांग्रेस का अखिल भारतीय सम्मेलन अहमदाबाद में आयोजित हुआ। यह कांग्रेस का छत्तीसवां अधिवेशन था। इस अधिवेशन में बिहार की पांच महिला प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था, ये थीं— श्रीमती लालादौलत राम, जानकी देवी, गुलाबन देवी, हरमति देवी, महादेवी तथा लीला सिंह।

गांधीजी ने जब असहयोग आंदोलन का शंखनाद किया तो भारी संख्या में महिलाएं भी आंदोलन में कूद पड़ीं।

बाई अमर ऐसी ही महिलाओं में से एक थीं। वह एक वीरांगना थीं। प्रार्थना-पत्र द्वारा अपनी मांगों को ब्रिटिश सरकार के समक्ष पेश करना उन्हें मंजूर नहीं था। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की कट्टर समर्थ थीं और देश की आजादी के लिए कुछ भी न्योछावर करने के लिए तैयार थीं। उन्होंने कई महिला सभाओं को संगठित किया।

असहयोग आंदोलन में शहरी व ग्रामीण सभी क्षेत्रों की महिलाएं सक्रिय थीं। बिहार के वैशाली जिला का हाजीपुर उन दिनों देहाती क्षेत्र की दृष्टि से पूरे भारत में आगे रहा। शहरी क्षेत्र में जिस तरह बंबई प्रथम था, ग्रामीण क्षेत्र में उसी तरह हाजीपुर के श्री किशोरी प्रसन्न सिंह की पत्नी सुनीति देवी, श्री कुश्वेसर सिंह की पत्नी विन्दा देवी, श्री कपिलदेव सिंह की माँ और श्रीमती रामसखी देवी तथा सत्यभामा देवी, सीता देवी, श्री रामबहादुर सिंह की पत्नी व माँ अन्य गांवों के अग्रणी नाम हैं। बिहार के इन देहाती इलाकों की स्त्रियों ने इतना नाम कमाया कि बाद में जेल से छूटने पर गांधीजी स्वयं उनसे मिलने गांव घटारो गये थे। नवादा जिले की विंध्यवासिनी देवी ने गया कांग्रेस में स्वयं-सेविका दल का संगठन किया।

मुजफ्फरपुर में जन्मी रामतनुक देवी भी सीतामढ़ी अनुमंडल की अग्रणी महिला नेताओं में प्रमुख कार्यकत्री थीं। उन्होंने मभफौलिया, चंदौली तथा बरोड़ा में महिलाओं की कई बैठकों को संबोधित किया। भागलपुर

नारियों की वीरता

❑ प्याजन बाई भागलपुरी

सारी जनता पै लाठी चलाई गयी।
खूब अंधाधुंध मचायी गयी।
धरमतल्ले के निकट मैदान आलीशान है।
रो रही थी उस जगह पर भीड़ बेपरमान है।
गन मशीनों की धमकी बतायी गयी।
लाठियों की मार से घबराई पब्लिक वहां।
कोरी धमकी पुलिस की बतायी गयी।
सैकड़ों घायल हुए हैं लाठियों की मार से।
कुछ हुए जख्मी सुनो तरंगी चाल से।
वाह-वाह ब्रिटिश की बतायी गयी।
नारियों की वीरता पर ख्याल करना चाहिए।
सुभाष बाबू की तरफ ख्याल करना चाहिए।
माह छः की सजा बतायी गयी।
महफिल में ये कहानी सुनायी गयी।
सारी जनता पे लाठी चलायी गयी।

× × ×

'प्याजनबाई भागलपुरी, भागलपुर के जोगसर मुहल्ले की एक तवायफ थीं, जो कलकत्ते से आकर बस गयी थीं। यह गाना गाने पर उन्हें छः मास की सजा दी गयी थी। उनका आवास क्रांतिकारियों विशेषकर श्री सियाराम सिंह के दल का शरणस्थल था, जिनको वे रुपये-पैसे से बराबर मदद करती थीं तथा गुप्त सूचनाएं क्रांतिकारियों तक पहुंचाया करती थीं। **–सं.**

(बिहार राज्य अभिलेखागार राजनीति विशेष संचिका संख्या-388/1931, प्रतिबंधित साहित्य)

के दीपनारायण सिंह की पत्नी श्रीमती लीला सिंह अपने पति के साथ कांग्रेस में बराबर अपनी भागीदारी निभा रही थीं। 5 जनवरी, 1922 को मुजफ्फरपुर के सफी मंजिल में नारी जागरण हेतु आयोजित महिलाओं की सभा उन्हीं की अध्यक्षता में हुई थी। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने पर्दा-प्रथा उन्मूलन तथा महिलाओं को आगे आकर स्वयं-सेविकाओं के रूप में कार्य करने का आह्वान किया।

6 अप्रैल, 1930 को गांधीजी ने गैर-कानूनी तरीके से नमक बनाकर ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी। फिर जगह-जगह नमक कानून तोड़कर हजारों लोग गिरफ्तारियां देने लगे। आजादी की लड़ाई के इतिहास में पहली बार इतनी बड़ी संख्या में बिहार की महिलाएं अपने घरों से निकलीं, उन्होंने प्रभात फेरियां निकालीं, जुलूस निकाले, सभाएं आयोजित कीं, नमक कानून भंग किया। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया एवं शराब की दुकानों पर धरने दिये। नेताओं के जेल चले जाने पर आंदोलन का नेतृत्व महिलाओं के हाथों में आ गया। प्रांतों में और स्थानीय केन्द्रों में वे कांग्रेस डिक्टेटर भी बनीं और उन्होंने कहीं-कहीं पुरुषों से अधिक दृढ़ता का परिचय दिया। श्री हसन इमाम की पत्नी ने पटना में छात्रों की कई सभाओं तथा बाढ़ की एक जनसभा को संबोधित किया। इन्होंने अन्य महिलाओं के साथ मिलकर 15 जुलाई को पटना में विलायती वस्तुओं के बहिष्कार का अभियान चलाया। 25 जुलाई वाले सप्ताह में पटना में महिलाओं के दो प्रदर्शन हुए। एक में लगभग 3 हजार महिलाओं ने भाग लिया। शाह मोहम्मद जुब्बैर की पत्नी ने भी पर्दा का परित्याग कर 25 जुलाई को मुंगेर में एक सभा को संबोधित किया। बहिष्कार आंदोलन चलाने के लिए एक महिला समिति का गठन किया। श्री हसन इमाम की पत्नी को 200 रुपये का जुर्माना तथा अन्य महिलाओं को एक-एक सौ रुपये का जुर्माना किया गया। इन्होंने खुली अदालत में वक्तव्य दिया कि वे जुर्माना नहीं देंगी।

श्री हसन इमाम की पत्नी और पुत्री ने आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए प्रांत की यात्रा की। इसी क्रम में श्री हसन की पत्नी ने मुजफ्फरपुर की महिलाओं की एक समिति बनाकर कताई का प्रचार अभियान चलाया। 12 अगस्त को श्रीमती चन्द्रावती देवी ने गया की एक सभा में चौकीदारी टैक्स नहीं देने की बात कही। छपरा जिला की बहुरिया रामस्वरूप देवी ने अपने पति की गिरफ्तारी के बाद आंदोलन का नेतृत्व संभाल लिया। बहुरियाजी के प्रभाव से आतंकित अंग्रेजी सरकार ने उन्हें भी 1 जनवरी, 1931 को जेल की सलाखों में डाल दिया। चम्पारण की रामप्यारी देवी ने 1931 में करांची में स्वामी सहजानन्द को हटाकर भारतीय कांग्रेस कमिटी की सदस्या बनीं। पटना जिला कांग्रेस की द्वितीय डिक्टेटर के रूप में पूरे जिले का इन्होंने क्रांतिकारी दौरा किया। पटना कांग्रेस की उपाध्यक्षा ये तीन बार बनीं और साथ-साथ पटना नगर कांग्रेस की अध्यक्षा भी रहीं। इसी प्रकार शाहाबाद जिला की श्रीमती कुसुम कुमारी, मुंगेर स्थित घुटवा गांव की श्रीमती गुलाब देवी, मुजफ्फरपुर जिले की रामतनुक देवी, रामदयालु सिंह की पत्नी तथा ठाकुर रामनन्द सिंह की पत्नी श्रीमती रामसूरत देवी ने गांव-गांव घूमकर आंदोलन के कार्य को आगे बढ़ाया।

स्पष्टतः असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन ने महिलाओं को देश की वास्तविक स्थिति से रू-ब-रू होने का अवसर प्रदान किया, उनमें समाज और राष्ट्र के भविष्य को गढ़ने का जज्बा पैदा किया। इसी का परिणाम था कि हर तबके की महिलाएं अपनी सामाजिक बेड़ियां तोड़कर अपना जीवन राष्ट्र-निर्माण में अर्पित करने के लिए उतावली हो उठीं। उन्होंने अपने कार्यों से न केवल नई मंजिलें तय कीं, वरन् भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत बनीं। ❑

❑ *एसोसिएट प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, जे. एल. कॉलेज, हाजीपुर (बिहार)*

प्रतिबंधित कविता

गांधी

–प्रेमचंद प्रसाद

गांधी के रूप में फिर श्री कृष्ण चन्द्र भाया।
भारत पवित्र भूमि पै चरखे को आ चलाया।
नव नीति को बताया गीता पुनीत रच कर।
आनंदमय अहिंसा व्रत एक अब बनाया।
रख चक्र तब उठाकर भारत फतह किया था।
सौ धार चक्र चरखा अब फिर समर में आया।
तब कंस को छकाया गोरस का दान लेकर।
अब राम राज्य पे अड़कर साम्राज्य को कँपाया।
तब धर्म को बचाया पाँडव के पक्ष में हो।
अब शांति का पुजारी बन भ्रांत को भगाया।
जेहल में जन्म लेकर गोविन्द तब बना था।
हो बार-बार बंदी गांधी जी अब कहाया।

(बिहार राज्य अभिलेखागार संख्या-प. वि. 279/1931, प्रतिबंधित साहित्य)

× × ×

भगत सिंह

–फकीरा शर्मा 'आजाद'

भारत के सच्चे दुलारे भगत सिंह।
माता की आँखों के तारे भगत सिंह।
नहीं चाहते थे पराधीन जीना।
भले मौत के जाम को होय पीना।
सदा देश सेवा का व्रत ले लिये थे।
न भय को कभी पास आने दिये थे।
जवानी का जौहर दिखाये भगत सिंह।
किया जान कुरबान मुँह को न मोड़ा।
गले प्रेम फाँसी को डोरी से जोड़ा।
सबक आज मान दुनिया को उसने सिखाया।
सभी की नसों के लहू को जगाया।
बिन त्याग मारग सिधारे भगत सिंह।
हमारा वतन हिन्द आजाद होता।
करोड़ों का कहना न बरबाद होता।
गांधी की बातों को ठुकराई न जाती।
कभी उनकी फाँसी लगाई न जाती।
मगर हाय छिन गये हमारे भगत सिंह।
शहीदों का खूँ यूँ न बरबाद होगा।
वतन उस लहू से ही आजाद होगा।
गुरुराज सुखदेव हरदम रहेंगे।
किसी के भी दिल से न हरगिज हटेंगे।
चलते रहेंगे हमारे भगत सिंह।

(जब्ती अधिसूचना वं. 2891/22-5-1931, बिहार राज्य अभिलेखागार संचिका सं. रा.वि. 215/1931, प्रतिबंधित साहित्य)

अंडमान जेल में क्रांतिकारी

❑ रामकुमार सिंह

अंडमान जेल का निर्माण 1906 ई. में हुआ था। यह जेल पोर्ट ब्लेयर के उत्तर-पश्चिम की पहाड़ी पर स्थिति है, जो समुद्र तट के किनारे है। इस जेल के निर्माण में दस वर्ष का समय लगा। तत्कालीन समय में इसके निर्माण पर 5 लाख 17 हजार 362 रुपये की लागत आयी थी। जेल-निर्माण करते समय 600 कोठरियों को बनाने का लक्ष्य था। लेकिन लक्ष्य से अधिक 690 कोठरियां बनकर तैयार हो गयीं। अंग्रेज सरकार ने सेलुलर जेल का महत्त्व देखते हुए अंडमान द्वीप की अन्य विकास से संबंधित कार्यों को रोककर 600 कैदियों के सहारे इस जेल का निर्माण करवाया।

अंडमान जेल से बिहार व उत्तर प्रदेश का गहरा संबंध रहा है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में यहां के क्रांतिकारियों का महत्त्वपूर्ण योगदान था। 1857 की क्रांति, 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन तथा अन्य आंदोलनों में क्रांतिकारियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया था। आंदोलन के समय अंग्रेज सरकार द्वारा बड़ी संख्या में यहां के आंदोलनकारियों को पकड़कर जेल में डाल दिया जाता था। फिर उन क्रांतिकारियों को कठोर सजा के लिए यहां की जेलों से अंडमान जेल में ट्रांसफर कर दिया जाता था। यहां से अंडमान जेल भेजे गये मुख्य क्रांतिकारी निम्न हैं :

श्यामचरण भरतवार : ये गया कांस-पिरेंसी केस, पटना कांसपिरेंसी केस तथा मोतीहारी कांसपिरेंसी केस में शामिल थे। उन्हें डालटेनगंज, गया तथा बनारस का रिंग लीडर माना जाता था। उनके मुख्य दोस्तों में केशव प्रसाद तथा विश्वनाथ प्रसाद शामिल थे। तीनों ने मिलकर अनेक क्रांतिकारी कार्यों को अंजाम दिया था। 30 वर्षीय श्यामचरण भरतवार का मुख्य कार्य क्रांतिकारी पम्पलेट छपवाकर क्रांतिकारियों के बीच बांटना था। ये डिरेलमेंट ट्रेन से भी संबंधित कार्यों को करते थे। डालटेनगंज में तीन डाक डकैती को अंजाम देने में इनका मुख्य नाम था। वह युवाओं को क्रांतिकारी गतिविधियों में सम्मिलित होने के लिए उत्तेजित करते थे। इन्हीं सब गतिविधियों के कारण भरतवार को अंग्रेजों ने अंडमान जेल भेज दिया था।

केशव प्रसाद : 27 वर्षीय केशव प्रसाद गया के प्रमुख क्रांतिकारी लीडर थे। इन्हें 'डेंजरस मैन' के उपनाम से संबोधित किया जाता था। इनको रिवाल्वर तथा अधिक मात्रा में कारतूस के साथ पुलिस ने पकड़ा था। इन्हीं गतिविधियों को देखते हुए ही उन्हें अंडमान जेल में ट्रांसफर कर दिया गया था।

चन्द्रिका सिंह : 24 वर्षीय चन्द्रिका सिंह को मधुबनी असॉल्ट केस में बंदी बनाकर भागलपुर जेल में कैद किया गया था। चन्द्रिका सिंह मूल रूप से इस्लामिया, पुलिस स्टेशन दिघवारा, जिला सहरसा के मूल निवासी थे। उनके नेता रामविनोद सिंह और योगेन्द्र शुक्ल थे। वह अपना नाम बदलकर सोहन सिंह के नाम से कुटीर में रह रहे थे। यहां रहते हुए वह क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न रहते थे। 15 जून, 1931 को हाजीपुर डकैती केस में स्टेशन मास्टर की मौत को घाट उतार दिया गया था। इसी केस में उन्हें स्पेशल ब्रांच ऑफीसर ने 4 दिसम्बर, 1933 को गिरफ्तार कर लिया था। भागलपुर जेल से उन्हें अंडमान जेल भेज दिया गया।

सूरजनाथ चौबे : इनका जन्म शाहाबाद जिला के (अब भोजपुर) में मझौली गांव में 21 मई, 1912 ई. को हुआ था। 1928 ई. में पटना कॉलेजिएट स्कूल से क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेने के कारण उन्हें निष्कासित कर दिया था। समयोपरांत युगान्तर दल तथा हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्य के रूप में कार्य किया। अनेक राजनैतिक डकैतियों में भी भाग लिया। मुखबीर रामललित को मार दिया, इसके कारण उन पर इनाम की भी घोषणा हुई थी। कुछ दिनों के बाद पटना के भीखना पहाड़ी के पास लोडेड पिस्तौल के साथ पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। 11 सितंबर, 1931 ई. में ट्रायल द्वारा उन्हें सात साल की सजा मिली थी। पटना षड्यंत्र कांड में उन्हें फांसी की सजा मिली थी। परन्तु पटना उच्च न्यायालय में अपील करने के बाद उनकी फांसी की सजा आजीवन कालापानी में बदल दिया गया।

योगेन्द्र शुक्ल : योगेन्द्र शुक्ल का जन्म 1896 ई. में मुजफ्फरपुर (अब वैशाली) लालगंज के निकट जलालपुर गांव में हुआ था। 1917 में गांधीजी द्वारा चम्पारण में राजनैतिक गतिविधियां शुरू की गयीं तो योगेन्द्र शुक्ल भी राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना प्रारम्भ किया।

असहयोग आंदोलन के दौरान इन्हें

गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। जेल से छूटने के बाद साबरमती आश्रम चले गये। पुनः बिहार वापसी के उपरांत हाजीपुर में क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न हो गये। *भगत सिंह को उन्होंने चम्पारण के जंगल में निशानेबाजी की ट्रेनिंग दी थी।* 1929 ई. में मौलनिया राजनैतिक डकैती में उनके ऊपर वारंट हो गया, इसके बाद वह 10 जून, 1930 ई. तक फरारी की स्थिति में रहे। 11 जून, 1930 ई. को मलखाचक गांव में सोये हुए स्थिति में पकड़े गये। इन्हें भागलपुर, हाजीपुर और कलकत्ता की जेलों में रखा गया था। अंग्रेजों को डर था कि जेल के अंदर क्रांतिकारी गतिविधियां उनके द्वारा चालाया जा सकता है। इसलिए उन्हें 1932 ई. में अंडमान जेल भेज दिया गया। उनके ऊपर अंडमान जेल में जुल्म ढाये गये। जेल में पांच क्रांतिकारी साथियों ने 1933 ई. में लम्बी भूख हड़ताल की थी, जिसके कारण उनकी आंखें खराब हो गयीं। 1937 में श्रीकृष्ण सिंह के हस्तक्षेप से शुक्लजी को अंडमान जेल से रिहा किया गया।

नारायण : बिहार के एक जाँबाज क्रांतिकारी नारायण जिसे दानापुर छावनी में राजद्रोह के विद्रोह में सेलुलर भेजा गया था। सेलुलर जेल में रहते हुए अभी कुछ ही दिन हुआ था कि जेल से भागने का षड्यंत्र रच डाला। जेल में जाने के चौथे दिन के बाद ही वह कुछ साथियों के साथ वह चैथम द्वीप से समुद्र में छलांग लगाकर भागने की कोशिश की, इसमें वह लगभग सफल हो गये होते, लेकिन तब तक अंग्रेजों की नजर उन पर पड़ी और अंग्रेजों ने उन पर गोली चला दी। एक नाव की सहायता से उन्हें पकड़ लिया गया। इस अपराध में उन्हें फांसी दे दी गयी।

श्यामदेव नारायण : इनका जन्म 5 अक्टूबर, 1905 ई. को भागर गांव, जिला सिवान में हुआ था। वह सिवान स्थित विक्टोरिया मेमोरियल उच्चतर विद्यालय में पढ़ते थे, तभी अचानक 1917-1922 के बीच बीमार पड़ गये। इसलिए उनकी पढ़ाई पूरी नहीं हो पायी। बीमारी की स्थिति में पुलिस के डंडों की मार का कोई असर उनपर नहीं होता था। चम्पारण से स्वथ्य होकर सिवान लौट गये। 1926 ई. में छपरा के विशेश्वर सेमिनरी में दाखिला लेने के बाद वह छपरा में ही लोकमान्य तिलक संगठन के सदस्य बन गये। इसी संगठन में चन्द्रशेखर आजाद से उनकी भेंट होती थी। योगेन्द्र शुक्ल और वैकुण्ठ शुक्ल से भी उनका सम्पर्क हुआ। सदाकत आश्रम से भी श्यामदेव का सीधा सम्बन्ध बना रहता था। पहली बार सोनपुर में पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। 6 माह की सजा काटकर 1931 ई. में जेल से रिहा हुए। इसी बीच वह 'बम पार्टी' के सक्रिय सदस्य बन गये। पुलिस से बचने के लिए अपना नाम रामसिंह रख लिया। लेकिन पुलिस उन्हें सदाकत आश्रम से गिरफ्तार कर ली। यूरोपियन क्लब को बम से उड़ाने की साजिश में उनपर मुकदमा चलाया गया। 18 अप्रैल, 1932 ई. को न्यायालय ने उन्हें काले पानी की सजा दी। उन्हें 63 वर्ष की सजा सुनायी गयी थी। 14 सितंबर, 1932 ई. को उन्हें अंडमान जेल भेज दिया।

बटुकेश्वर दत्त : बटुकेश्वर दत्त का जन्म 2 नवंबर, 1910 ई. को कानुपर में हुआ था। आई.ए. पास करने के बाद वह क्रांतिकारियों के संगठन में शामिल हो गये। वह हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी के सक्रिय सदस्य थे। भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद विस्मिल के वे सहयोगी रहे। भगत सिंह तथा बटुकेश्वर दत्त को सेंट्रल असेम्बली, दिल्ली से उनको लाहौर जेल भेज दिया गया। लाहौर जेल में कुव्यवस्था के खिलाफ भूख हड़ताल कर दिया। लाहौर षड्यंत्र कांड में बटुकेश्वर दत्त तथा भगत सिंह एवं राजगुरु के शामिल होने के कारण विशेष न्यायालय ने भगत सिंह को फांसी तथा बटुकेश्वर दत्त को लाहौर जेल से आजीवन कालापानी की सजा भुगतने के लिए अंडमान जेल भेज दिया। जेल में वह बीमार रहने लगे। इस कारण से 8 सितंबर, 1938 ई. को कुछ शर्तें स्वीकार करने के बाद उन्हें जेल से छोड़ दिया गया। 1942 के विद्रोह में सक्रिय रूप से भाग लिया, इसलिए उन्हें पुनः जेल भेज दिया गया। देश की आजादी के बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया।

गुलाबचन्द गुप्ता : गुलाबचन्द गुप्ता का जन्म बिहार के पश्चिम चम्पारण जिला के चनपटिया ग्राम में हुआ था। गुलाबचन्द बाद के दिनों में गुलाली सुनार के नाम से प्रसिद्ध हुए। 1928 ई. में भगत सिंह तथा योगेन्द्र शुक्ल के सम्पर्क में आकर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्य बनकर 1929 ई. में हुए मॉलनिया डकैती केस में मुख्य भूमिका निभायी थी। इस कांड में सम्मिलित होने के कारण केस नं. 19 ऑफ 1929 के ऐतिहासिक फैसले में मोतीहारी के सेशन जज ने 16 दिसंबर, 1929 ई. को आई.पी.सी. की धारा '396' के अंतर्गत 10 वर्ष की कारावास की सजा सुनायी। पीड़ित क्रांतिकारी पटना हाईकोर्ट में 1930 ई. में अपील की, लेकिन हाईकोर्ट ने अपील को खारिज कर दिया। इसके बाद गुलाबचन्द गुप्ता को ननकु सिंह के साथ अंडमान जेल भेज दिया गया। अंडमान जेल में उन्होंने अन्य कैदियों के साथ 54 दिनों का भूख हड़ताल किया। प्रधानमंत्री श्रीकृष्ण सिंह के प्रयास से 25 सितंबर, 1937 ई. को गुलाबचन्द सहित 15 कैदियों को रिहा कर दिया गया। अब उन्हें हजारीबाग के केन्द्रीय जेल में डाल दिया गया। 9 नवंबर, 1942 ई. को हजारीबाग सेंट्रल जेल से चहारदीवारी लांघकर भाग गये। नवंबर 1944 ई. को बनारस में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

याद अली : याद अली नार्थ-वेस्ट प्रोविंस के एक सिपाही का नौकर था। लखनऊ में विद्रोह के दौरान वह 7वीं रेजिमेंट के विद्रोहियों के साथ था। मुंगेर के विशेष आयुक्त जे. सी. विल्सन की 26 मई, 1858 की रिपोर्ट के अनुसार वह 7वीं रेजिमेंट के विद्रोही के साथ दिल्ली गया था। उसे गोली भी लगी थी। उसे पुलिस ने मुंगेर में गिरफ्तार कर लिया। विद्रोही गतिविधियों के कारण उन्हें सजा दी गयी तथा अंडमान जेल भेज दिया गया।

सूरज मांझी : 60 वर्ष की उम्र में अंग्रेजों के विद्रोही बनकर अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। अंग्रेजों ने उनपर भाषण के माध्यम से उत्तेजना फैलाने का आरोप लगाया। 13 नवंबर, 1857 ई. को उन्हें उम्रकैद की सजा दी गयी। 3 सितंबर, 1858 ई. को उन्हें अलीपुर जेल से अंडमान जेल भेज दिया गया।

शिवसहाय दुबे : अंग्रेजों के विरोध में उन्होंने हथियार उठाया था। उन्हें ग्रेंट ट्रंक रोड पर 72वीं नोटिव इंफैक्ट्री के सिपाहियों के साथ एक मंदिर में मुठभेड़ के दौरान गिरफ्तार कर लिया गया। यह घटना 24 अगस्त, 1858 को घटी। 4 अगस्त, 1858 ई. को मेजर रैंट्रे ने शिवसहाय दुबे को उम्रकैद की सजा सुनायी। उन्हें पोर्टब्लेयर स्थित अंडमान जेल भेज दिया गया। 1860 ई. में उन्होंने अपनी रिहाई के लिए आवेदन सरकार को दिया लेकिन आवेदन को निरस्त कर दिया गया।

अमन सिंह : वजीरगंज में खुशियाल सिंह, कौशल सिंह के साथ अमन सिंह ने 8 सितंबर, 1857 ई. को वजीरगंज में झंडा फहराया था। सभी विद्रोहियों ने बनियों से कहा कि ''अंग्रेजों को कर नहीं देना है'' अंग्रेजी राज्य अब समाप्त हो गया है। जेल में बढ़ते हड़ताल एवं अन्य कार्यों को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ने जेल में सुधार हेतु निर्णय लिया। ❑

❑ *शोध सहायक, बिहार राज्य अभिलेखागार।*

तब और अब!

यह कैसी आजादी है?

हर आंखों के आंसू कौन पोछे!

❑ किशनगिरी गोस्वामी

लोकतंत्र में शासन-प्रशासन वह आईना है, जिसके प्रतिबिम्ब से आम लोग अपना चेहरा मिलाते हैं और फिर अपना जीवन भी वैसा ही बनाना चाहते हैं। इसलिए जो सामने है, आगे है, उनकी जिम्मेदारी भी बड़ी होती है। सार्वजनिक जीवन के मर्म और उसकी मर्यादा का पाठ पढ़ाते हुए गांधीजी ने कहा है—''हम जिनके प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, उनके वर्तमान और भविष्य से हमारा क्या नाता है? यह हमारी जीवनशैली से पता चलना चाहिए। अगर वर्तमान अभाव भरा है, तो उस अभाव में हमें हिस्सेदारी करनी होगी। भविष्य तिनका-तिनका जोड़ने की चुनौती दे रहा है, तो शासन-प्रशासन को भी तिनका-तिनका जोड़ते हुए दिखायी देना चाहिए। यह कोई चुनावी रणनीति या दूसरों को टेढ़ी स्थिति में डालने की चालाकी नहीं है बल्कि अंदर से पैदा हुआ अहसास है। इसलिए खुद से शुरू होता है।'' सार्वजनिक धन से स्वयं शानदार तरीके से रहन-सहन क्या अनैतिकता नहीं है? सार्वजनिक जीवन में रहने की आकांक्षा रखना और अपने आर्थिक वैभव, सत्ता तक पहुंच आदि का प्रदर्शन करना भी अनैतिकता की श्रेणी में आता है। जनता का उपकार करने और जनता के बीच रहने में जो बड़ा फर्क है, इसकी समझ ही अभी तक हमारे राजनेताओं में बनी नहीं है।

कभी-कभी यह सोचने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि क्या सभी गुण राजनेताओं में ही होते हैं? चुनाव जीतने के बाद विद्वत्ता, पाण्डित्य, ईमानदारी एवं सेवा आदि सब-के-सब गुण उनमें अचानक आ जाते हैं। वे चिन्तक भी होते हैं, विद्वान भी होते हैं, भविष्य-द्रष्टा भी होते हैं, समाज-सेवक एवं समाज-सुधारक भी होते हैं। तो फिर देश में अन्य किसी की आवश्यकता ही क्या है? इसीलिए आज के विद्यार्थियों में एक होड़ है—पैसा कमाने की। देश, समाज और यहां तक कि घर-परिवार भी पीछे छूट जाता है—पैसे के कारण! विद्यार्थी होश संभालते ही पैकेज को आदर्श मानते हैं। मानवताविहीन विज्ञान, श्रमहीन धन और आदर्शहीन राजनीति—ये तीन पाप त्रय ने काफी अकल्याण किया है समाज का।

राजनेता बनते ही व्यक्ति अचानक मामूली से गैर-मामूली में तब्दील हो जाते हैं। तब वह पहला काम स्वयं को जमीन से डेढ़ इंच उठाने का करते हैं। उनके कदम पहले जमीन पर पड़ते थे, आज कल वे हवा में पैर रखते हैं। अचानक उन्हें अपने आस-पास के लोग छोटे लगने लगते हैं। जब कोई कुछ अधिक ही ऊंचा उठता है, तो उसे नीचे वाली चींटी से ज्यादा कुछ नजर नहीं आते। जैसे-जैसे राजनेता का कद बढ़ता जाता है, वह गैर-मामूलियत की ओर बढ़ने लगता है। आम से खास हो जाता है। हमारे नेता ही नहीं, अफसर और नव धनाढ्य इसकी खास मिसाल हैं। हमारे आधुनिक नेता वोटों के प्रति, नोटों के प्रति एवं अपने बेटों-पोतों के प्रति खूब संवेदनशील हैं। श्री एन. आर. नारायणमूर्ति के अनुसार—*हमारे राजनेता और नौकरशाह आज भी औपनिवेशक मानसिकता में जीते हैं और सामंतों की तरह व्यवहार करते हैं। उनमें न तो निष्पक्षता है और न ही पारदर्शिता। इसी कारण देश में राज-काज की इस कदर दुर्गति है। सच है कि जहां कुर्सियां ही दखल रखती हैं, वहां कुर्बानियां और कल्पनाएं सूखती जाती हैं। हमारे साथ ऐसा ही हो रहा है और हम खोखली आत्माओं का विलाप राष्ट्र के नाम संदेश के रूप में सुन रहे हैं।*

वर्तमान में हमारी राज्य सत्ता विधायक गुणों से शून्य हो चुकी है। राष्ट्रीय समस्याओं

के समाधान की दिशा में पहल करने की कौन कहे, वह स्वयं समाधान के रास्ते में बड़ी रुकावट बन रही है और नयी-नयी समस्याओं को जन्म देकर राष्ट्रीय जीवन के संकट को बढ़ा रही है। अंग्रेजी राज में तो मुट्ठीभर अंग्रेज हमारे ऊपर राज करते थे, आज 10 प्रतिशत लोग 90 प्रतिशत के सीने पर सवार हैं। कुछ भी हो, एक परिवर्तन बड़ा हुआ है कि अंग्रेजों की सरकार तलवार के बल पर बनी थी, लेकिन हमारी सरकार हमारे ही वोट से बनी है और हमारे नोट से ही चलती है।

इस देश के राजनेताओं ने यह तय कर लिया है कि वोटों की राजनीति के चलते देश और देशवासियों का कितना भी अपमान किया जाय, चलेगा। महंगाई बढ़ाने वाले कितने भी निर्णय किये जायं, सब वाजिब होंगे। यह तय कर लिया है कि पड़ोस का कोई मित्र नहीं रहेगा। फिर भी उनके नागरिक अनाधिकृत रूप से प्रवेश पाते रहेंगे। अब तो यह भी तय करते जा रहे हैं कि सीमा पर या अन्य अशांत क्षेत्रों में तैनात फौजें किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं कर सकेंगी। फौजी रहेंगे, जनता उनको मारेगी। जैसा कि हाल ही में कश्मीर में हम देख चुके हैं। जनता का यह हौसला सरकार की नीति के कारण बढ़ रहा है। कौन नहीं जानता कि कश्मीरी अलगाववादी तेजी से बढ़ रहे हैं। सड़कों पर 'Go Indians' लिखा हुआ है। वहां पाकिस्तानी मुद्रा के चलन का दबाव बढ़ाया जा रहा है। किस भारतीय को यह बर्दाश्त हो सकता है? सिवाय सरकार और राजनेताओं के! कश्मीरी हिन्दुओं को वापिस लौटाने की चर्चा वोट नीति में कहीं खो गयी। समानता का कानून चिंदी-चिंदी हो गया है। स्वयं को देशभक्त कहने वाले क्षुद्र स्वार्थवश देश की एकता और अखंडता के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं—हम आने वाली पीढ़ियों को कौन-सा स्वरूप पहुंचायेंगे?

जो संस्थाएं राजसत्ता को समाजोन्मुख बनाकर उसे जीवनी शक्ति प्रदान करती हैं और लोकतंत्र को जीवंत बनाती हैं, उन्हें पंगु बनाकर राज्य सत्ता स्वयं पंगु बन गयी है और अब तो दृढ़तापूर्वक यह कहा जा सकता है कि अपने वर्तमान स्वरूप में राष्ट्र के विकास की दृष्टि से उसकी भूमिका पूरी तरह नकारात्मक हो गयी है। इस नाते यह जन-विरोधी, लोकतंत्र-विरोधी तथा राष्ट्र-विरोधी बन गयी है। लोकतंत्र के मंच पर छः शक से राजनीतिक नाटक खेला जा रहा है, जो क्रमशः गंभीर नाटक से प्रहसन और प्रहसन से ट्रेजिक कॉमेडी में तब्दील होता जा रहा है। लोकतंत्र का यह वर्तमान नाटक अराजकता लायेगा या क्रांति, यह भविष्य के गर्भ में है।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था—*''हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े आदमी की यह आकांक्षा थी कि प्रत्येक आंख के आंसू को पोंछ दिया जाय। ऐसा करना हमारी शक्ति से बाहर हो सकता है, लेकिन जब तक आंसू और पीड़ा है, तब तक हमारा काम पूरा नहीं होगा।''* इसके उलट आज आम आदमी के सम्मान को तो सरकारी लोगों एवं राजनेताओं ने ताक पर रख दिया है। आरक्षण के कारण बिना शत्रु देश खंडित हो गया है। अमीर-गरीब के बीच खाईं दिन-ब-दिन बेहद चौड़ी होती जा रही है। जहां देश बिकता हुआ दिख रहा है, वहां ये राजनेता आजादी की कसमें खा-खाकर सत्ता सुख भोग रहे हैं।

जिस जमीन को गुलामी से मुक्त कराने हेतु संग्राम किया गया था, उस जमीन का दर्द इन ''काले अंग्रेजों'' के जेहन में कहीं भी दिखायी नहीं दे रहा है। यह कैसी आजादी है? सरकारी अमले के बाहर कोई देखे–आजादी का अर्थ क्या है? जनता का कोई भी सपना पूरा नहीं हुआ है। खोटे लोग अब सत्ता तक पहुंचने लगे हैं। क्या भद्र समाज सच में ऐसा मानता है कि कोई प्रामाणिक आदमी आज चुनाव में जीत सकता है। लगता है कि भविष्य में कोई भला आदमी राजनीति में आयेगा ही नहीं। समाज जिन बुराइयों से मुक्त होने के लिए स्वराज के सपने देखता था, दुर्भाग्य से आज वे सुरसा की तरह मुंह बाए खड़ी है।

आजादी का मतलब भोग-विलास के अपार साधन जुटाने का अवसर नहीं है। हमारी आजादी की मात्रा में तो इजाफा हो रहा है, पर उसकी गुणवत्ता गिर रही है अर्थात् हम जितने आजाद हो रहे हैं, उतने ही गिरते जा रहे हैं। पहले हमने अहिंसा त्यागी, फिर सत्य त्यागा, फिर ईमानदारी त्यागी। इसके बाद तो त्यागने की होड़ मच गयी है। जिन लोगों पर देश के खजाने की रक्षा का भार है, वे ही सबसे ज्यादा गबन और हेरा-फेरी कर रहे हैं। आजादी के पहले अगर देश के नौजवानों ने यह सब किया होता, तो देश आज भी गुलाम होता। हमें उनके बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए।

सबसे बड़ी समस्या यह है कि देश की कोई गहरी समझ और उसका वैकल्पिक खाका हमारे राजनेताओं के सामने है ही नहीं। दिहाड़ी की राजनीति से न तो देश चलते हैं और न बनते हैं। राष्ट्रीय प्रतिबद्धता की कमी से देश कराह रहा है।

इसका निराकरण है—हर व्यक्ति अपने दायित्व का स्वयं वहन करे। जागरूक रहे। हमें स्वच्छंदता का दैत्य को मारने की शक्ति, प्रेरणा और दायित्व-बोध को सामूहिक रूप से बनाये रखना होगा। अगर राजनीतिक दल और राजनेता यह तय कर लें कि हम हर मामले में राजनीति नहीं करेंगे, तो बहुत-सी समस्याएं पैदा ही न हों। महज चुनाव के समय राजनीति हो, फिर पूरे पांच साल सत्ता पक्ष, प्रति पक्ष मिलकर काम करें, तो देश की तस्वीर बदल सकती है। इसमें मुश्किल कुछ भी नहीं—जरूरत है पूर्वाग्रह-दुराग्रहों से मुक्त होने की। दूसरे बहुत से देशों में ऐसा ही होता है, इसीलिए शायद उनके विकास की गति हमसे तेज है। हमारे राजनेताओं को यह बात याद रखनी चाहिए कि वे सिर्फ उसी सूरत में याद किये जायेंगे, जब वे अपनी आने वाली पीढ़ी को एक सुरक्षित और समृद्ध भारत सौंप सकेंगे। एक ऐसा देश जो आर्थिक रूप से खुशहाल हो और जिसमें सांस्कृतिक विरासत सुरक्षित हों। ❑

गांधी सिर्फ मानवतावादी थे!

लेखिका अरुन्धती रॉय के वक्तव्य पर सर्व सेवा संघ की ओर से प्रतिक्रिया

सर्व सेवा संघ (अखिल भारतीय सर्वोदय मंडल) के राष्ट्रीय प्रवक्ता श्री भवानी शंकर कुसुम ने पिछले दिनों लेखिका अरुन्धती रॉय द्वारा गांधी को जातिवादी बताये जाने को अत्यन्त हास्यास्पद तथा गांधीजी के बारे में उनके अधूरे व अल्प ज्ञान का परिचायक बताया है और इसपर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अपने एक वक्तव्य में उन्होंने कहा कि गांधीजी का जीवन जितना स्पष्ट और पारदर्शी है, उतना विश्व के किसी भी राजनेता का नहीं है। उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं की तरह जाति और धर्म के बारे में भी अनेक घटनाएं उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को स्पष्टता के साथ प्रकट करती हैं, उनमें से कुछ यहां उल्लेखनीय है :

1912 में दो हजार से अधिक लोगों के साथ दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने जो ऐतिहासिक सत्याग्रह कूच किया था और जिसके परिणामस्वरूप जनरल स्मट्स को तीन कटिया (पाउंड) कर समाप्त करना पड़ा था, वह तीन कटिया टैक्स दबे-कुचले गरीब भारतीय वर्षों से देते आ रहे थे, जिनमें अधिकांश पिछड़ी जातियों के थे।

भारत आने पर 1917 में जब गांधीजी ने अपने कुछ साथियों के साथ साबरमती आश्रम की स्थापना की थी तो उसमें कुछ पिछड़ी जातियों के लोग भी आ गये थे, जिनमें सफाई-कार्य करने वाले भी थे। पिछड़ी जाति के इन लोगों को आश्रम में भर्ती किये जाने का अन्य आश्रमवासियों ने विरोध किया तथा उन्हें रखे जाने पर आश्रम छोड़कर चले जाने की धमकी दी थी, लेकिन गांधीजी ने इसकी परवाह न करते हुए 'हरिजनों' को आश्रम में रखा। यह पिछड़ी जाति के लोगों को अपने साथ आजादी की लड़ाई में जोड़े रखने का गांधीजी का पहला और दृढ़ प्रयत्न था।

यदि अरुन्धती रॉय को इतिहास की जानकारी हो तो उन्हें याद होना चाहिए कि देश में अछूतोद्धार के लिए उपवास करने वाले गांधीजी देश के पहले राजनेता थे, जिन्होंने 1932 में कहा था—''यदि यह सिद्ध कर दिया जाय कि अस्पृश्यता हिन्दुत्व का अभिन्न अंग है तो मैं खुले रूप से उसके विरुद्ध बगावत करुँगा।'' इसके फलस्वरूप इलाहाबाद के 12 हिन्दू मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिये गये थे।

इसी तरह 1924 में त्रावणकोर (वर्तमान में केरल) में दलितों के मंदिर-प्रवेश के लिए गांधीजी द्वारा चलाया गया वायकॉम सत्याग्रह विशिष्टता के साथ इतिहास में दर्ज है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल वहां के दलितों को मंदिर में प्रवेश मिला, बल्कि 1936 में वहां के तत्कालीन महाराजा और दीवान ने दलितों के मंदिर-प्रवेश पर प्रतिबंध पूरी तरह समाप्त कर दिया।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर को कांग्रेस का सदस्य न होते हुए भी नेहरू मंत्रिमंडल में गांधीजी के आग्रह पर ही शामिल किया गया, जिसे अरुन्धती रॉय को याद करना चाहिए। भंगी-मुक्ति के संदर्भ में गांधी से पहले शायद किसी ने नहीं कहा 'हर व्यक्ति को स्वयं अपना भंगी बनना ही चाहिए।'

सीमांत गांधी के नाम से मशहूर खान अब्दुल गफ्फार खान ने कहा था—*'गांधी से मिलकर मेरी जिन्दगी हमेशा के लिए बदल गयी'* और उन्होंने एक लाख खुदाई खिदमतगारों की अहिंसक सेना का निर्माण किया था, जिसमें हजारों पठान महिलाएं भी थीं।

जिस चरखे-करघे को गांधीजी ने आजादी की लड़ाई का महत्त्वपूर्ण औजार बनाया, उनको प्राचीनकाल से पिछड़ी जाति के लोग आजीविका के रूप में चलाते आ रहे थे। चरखे को सर्वोच्च महत्त्व देकर गांधीजी ने पिछड़ी जाति के उन लाखों-करोड़ों लोगों को देश की मुख्य धारा में शामिल किया था।

विख्यात अमेरिकी विचारक तथा 'थर्ड वेव' के लेखक *एल्विन टोफलर* के शब्दों में *'गांधी नयी विचारधारा, नयी जीवन-दृष्टि तथा नयी जीवन-पद्धति के प्रतीक हैं।'*

मार्टिन लूथरकिंग ने अपनी पुस्तक 'द पॉवर ऑफ नॉन वॉयलेंट एक्शन' में जो लिखा है, वह अरुन्धतीजी को अवश्य पढ़ना चाहिए। उन्होंने लिखा है—*''गांधी सशक्त संघर्षों के प्रणेता थे—जातिवाद, उपनिवेशवाद, आर्थिक शोषण तथा वर्णभेद के विरुद्ध, लोकतांत्रिक भागीदारी के लिए, महिलाओं के सशक्तिकरण तथा राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन में अहिंसा के प्रयोग के लिए गांधी की उपादेयता तब तक समाप्त नहीं होगी, जब तक पृथ्वी पर हिंसा समाप्त नहीं होती।''*

भवानी शंकर कुसुम ने आगे कहा कि अरुन्धती राय ने अपनी पब्लिसिटी के लिए ऐसा बेतुका बयान देकर अपने ज्ञान और अपरिपक्व मानसिकता का परिचय दिया है, जिसके लिए उन्हें गांधीजी के समग्र व्यक्तित्व को ठीक से समझने हेतु उनके विचारों का अध्ययन करना चाहिए और हो सके तो उन्हें गांधी को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करना चाहिए, जो जीवन आज पूरी दुनिया के लिए बड़े आकर्षण और अन्वेषण की चीज है। जो गांधी के रास्ते पर तनिक भी न चल पाये उन्हें गांधी को असफल करने का कोई हक नहीं है।

अरुन्धती राय को यह समझना चाहिए कि गांधी, देश या विदेश की किसी संस्था का मोहताज नहीं, बल्कि गांधी का नाम लेकर ही ये संस्थाएं अपना नाम व काम दोनों चला रही हैं। ❑

भूल-सुधार

'सर्वोदय जगत' वर्ष 37, अंक 23 (16-31 जुलाई, 2014) में पृष्ठ 20 पर प्रिंट लाइन में छपे मुद्रक का नाम *'सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मदलहिया, वाराणसी'* की जगह *'पूनम प्रिण्टिंग प्रेस, धूपचण्डी, वाराणसी'* प्रेस की भूल से अशुद्ध छप गया है। इस भूल के लिए हमें खेद है। **–सं.**

क्रांतिकारी स्व. दिनकरदत्त चौबे की तीन प्रतिबंधित कविताएँ

यह समय की पुकार है कि देश की नयी पीढ़ी को स्वतंत्रता संग्राम की देशभक्ति रचनाओं से अवगत कराया जाय ताकि इन उत्प्रेरक गीतों से एक नयी चेतना मिल सके और राष्ट्र की संपूर्ण जन-मानस देश की एकता तथा अखंडता बनाये रखने के लिए कृत-संकल्पित हो सके।

स्वतंत्रता संग्राम की उत्प्रेरक इन तरानों के रचनाकार सेनानी हमारे बीच नहीं हैं। उन दिवंगत सेनानी कवि को विनम्र श्रद्धांजलि, जिनके गीतों ने आज़ादी की लड़ाई के समय करोड़ों देशवासियों को प्रेरित किया तथा आजादी के इन तरानों की गूंज अंग्रेज शासकों के कलेजों को हिलाकर रख दिया।

ये कविताएं स्व. दिनकरदत्त चौबे, सारण (बिहार) द्वारा लिखित हैं तथा 1 मार्च 1932 को छपरा कचहरी रेलवे स्टेशन पर इन्हें गाने व बेचने के जुर्म में गिरफ्तारी के समय बरामद की गयी। स्व. चौबे दोनों हाथों से विकलांग होते हुए भी कविताएं करते थे, जैसा सारण के तत्कालीन सुपरिटेंडेंट ने अपने पत्र सं. 95-सी दि. 7.3.1932 में कहा है। ये कविताएं बिहार राज्य अभिलेखागार संचिका सं. 1011/1932 राजनीति विशेष में प्रतिबंधित साहित्य के रूप में उल्लेखित हैं। –सं.

(1) गोलियां बरसे मगर

गोलियां बरसे मगर तैयार सहने के लिए।
भाई सब हैं खड़े आजाद होने के लिए।
अब पेशावर के शहीदों मर के तुम जिन्दा हुए।
काम तेरा है अमर, हमको जगाने के लिए।
कौम के रहबर भगत सिंह तुम मसीहा बन गया।
तूने दी तालीम है, मिटने-मिटाने के लिए।
चौंकता है क्यों अभी से आसमाने मग़रिबी।
नौजवानें हैं हिन्द है अस्फाक़ बनने के लिए।

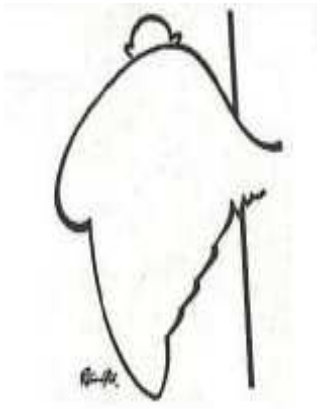

(2) मुझे न रोको वतन पे निसार होने दो

मुझे न रोको वतन पे निसार होने दो।
बलायें रंज-औ-ग़म सर पर हजार होने दो।
शिवा प्रताप की जोशें जुनूँ हैं खून में।
हिन्द माता के लिए गम गुसार होने दो।
मुझे अब चाह नहीं महलों की बहिस्त की भी।
जेलखाना मेरे लिए जन्नत का द्वार होने दो।
मर जाऊं भी कहीं तो मज़ार पर यों लिखने दो।
शहीदे वतन मुझे बार-बार होने दो।

(3) तुझे बधाई है ऐ पागल मर कर भी जीने वाले

प्राणों पर इतनी ममता औ स्वतंत्रता का सौदा।
बिन तेल के दीप जलाने का है कठिन मसौदा।
मोती बिखराते बीतेंगी जलती जीवन घड़ियां।
बिना चढ़ाये शीश नहीं टूटेंगी माँ की कड़ियां।
दुनिया में जिनका सबसे सुन्दर मधुर तकाज़ा।
ऐ शहीद उठने दे अपना फूलों भरा जनाज़ा।
फटे हुए मां के आँचल को बढ़कर सीने वाले।
तुझे बधाई है ऐ पागल मर कर जीने वाले।

इस अंक में प्रकाशित सभी प्रतिबंधित कविताओं के संकलनकर्ता अशोक मोती है।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन/फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार, अ.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1450